॥ श्रीहरिः ॥

173

भक्त-सप्तरत्न

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला ६)
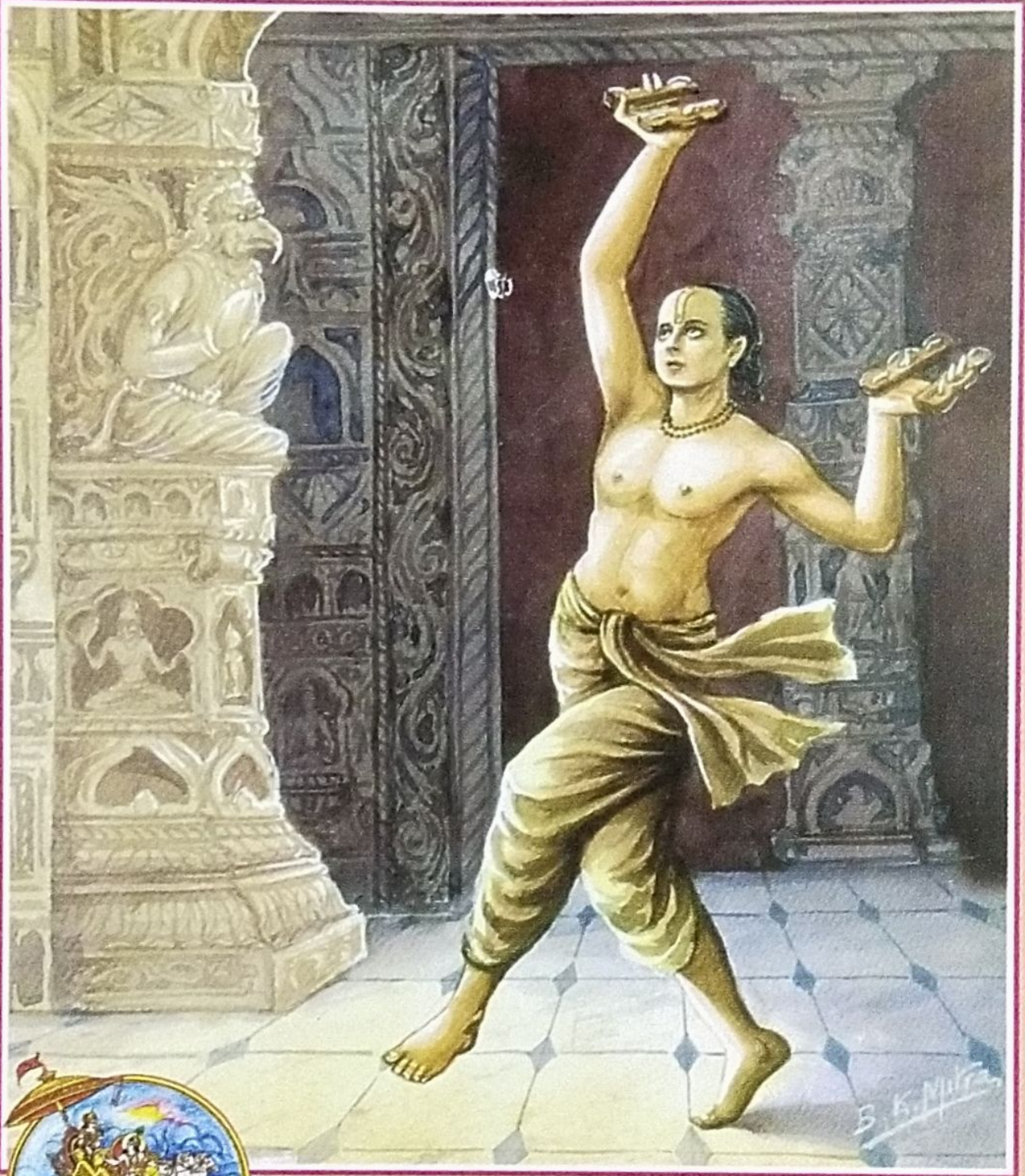
गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ श्रीहरिः ॥

(संक्षिप्त भक्त-चरित-माला ६)

भक्त-सप्तरत्न

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

सम्पादक—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरि: ॥

निवेदन

भक्तोंके चरित्रसे हृदयपर जैसा असर होता है वैसा अन्य किसी साधनसे नहीं होता। यह भक्त-चरित-मालाका छठा पुष्प है। इसमें सात भक्तोंकी सुन्दर कथाएँ दी गयी हैं। पहली कथा सन्तलीलामृतसे और शेष ६ कथाएँ भक्त-चरित-मालासे ली गयी हैं। पाठकोंने इस पुस्तकसे लाभ उठाया तो आगे इस चरित-मालामें और भी सुन्दर-सुन्दर पुष्प पिरोये जायँगे।

—हनुमानप्रसाद पोद्दार

॥ श्रीहरिः ॥

विषय-सूची

नाम	पृष्ठ-संख्या

॥ श्रीहरिः ॥

भक्त-सप्तरत्न

परमभक्त दामाजी पन्त

तेरहवीं शताब्दीकी बात है। महाराष्ट्रमें लगातार बारह वर्षतक वर्षा न होनेके कारण घोर अकाल पड़ा। यह अकाल आजतक दुर्गादेवीके नामसे प्रसिद्ध है। अन्नके अभावसे लोगोंमें भीषण चीत्कार मच उठा। हजारों प्राणियोंके प्राण-पखेरू उड़ गये, हजारोंके शरीरपर देखनेमात्रको भी खून न रह गया। अनेकों प्राण चर्मावृत अस्थिसमूहके पुतलोंमें अटके पड़े थे। संकट पड़नेपर किसको क्या नहीं करना पड़ता? वृक्षोंकी छाल और पत्तोंकी रोटियोंसे लोगोंने निर्वाह किया, पर पूरे एक युगतक इन सबसे कहाँतक काम चल सकता था? लोगोंके कष्टकी सीमा नहीं रही, व्याकुलता दिनोंदिन बढ़ने लगी। देश भूखोंके आर्तनादसे भर गया।

× × × ×

गोवलकुण्डा बेदरशाही राज्यके अन्तर्गत मंगलबेड़्या नामका प्रान्त था। वहाँका शासन-भार भक्तप्रवर श्रीदामाजी पन्तके सुपुर्द था। उनकी सहधर्मिणी भी पतिके ही सदृश भगवान् श्रीपाण्डुरंगकी भक्तिमें अनन्यभावसे प्रेम करती थीं। नित्य-निरन्तर श्रीहरिको स्मरण रखते हुए अपने कर्तव्यका न्यायपूर्वक निष्कामभावसे सम्पादन करना ही दामाजीके जीवनका दिव्य व्रत था। दीन-दुःखियोंको हर तरहसे सहायता पहुँचाकर सुखी बनाना तो उनका स्वाभाविक गुण हो गया था। शत्रुको भी संकटमें पड़ा देखकर करुणार्द्र हो जानेवाले दामाजीके लिये अपनी अकाल-पीड़ित प्रजाके कष्ट असह्य हो रहे थे। दुःखी प्रजाके करुणक्रन्दनसे दामाजीका कलेजा पसीज उठा। अन्नके लिये तड़प-

तड़पकर प्राण देनेवाले मनुष्योंकी मर्मभेदी रुदनध्वनि उनसे सुनी नहीं गयी। उनके हृदयमें किसीने पुकारकर कहा, 'दामाजी! किस असमंजसमें पड़े हो? यह अन्नका भण्डार फिर किस काम आवेगा? खोल दो ताले और लूट लेने दो सारा अन्न इन भगवान्के भूखे पुत्रोंको!' बस, फिर क्या था? दीनबन्धुकी दीन संतानके लिये अन्नका कोठार खोल दिया गया। दयाके सामने बादशाहका भय कैसा? अपने भावी संकटोंका विचार कैसा? सच्चे भक्त तो दूसरोंको सुखी देखनेके लिये अपना सर्वस्व होम सकते हैं, अपने लिये दुःखरूपी भगवत्प्रसादको सहर्ष स्वीकार कर सकते हैं। भूखसे व्याकुल हजारों मनुष्य मरनेसे बच गये। उनकी तृप्त अन्तरात्माएँ दामाजीको आशीर्वाद देने लगीं।

समाजमें जहाँ ऐसे '**सर्वभूतहिते रताः**' लोग होते हैं वहाँ '***पर हित घृत जिन्ह के मन माखी***' इस प्रकृतिवालोंकी भी संख्या कम नहीं होती। भक्तके बढ़ते हुए यश और असहाय प्रजाके सुखको कुछ कुटिलकर्मी (बेचारे भूले हुए अतः दयाके पात्र) लोग सहन नहीं कर सके। उनमें प्रधान दयाके पात्र श्रीदामाजीके सहायक नायब सूबेदार थे। उन्होंने तुरन्त बादशाहके पास यह शिकायत लिख भेजी कि 'दामाजीकी अदूरदर्शिताके कारण सारा सरकारी भण्डार खाली हो गया है। उसने सारा अन्न अपनी कीर्तिके लिये लुच्चे-लफंगोंको लुटा दिया। खजानेकी बड़ी भारी हानि हुई है।'

पत्र पाते ही बादशाहकी आँखोंसे खून बरसने लगा—वह क्रोधके मारे पागल हो गया। तत्काल यह हुक्म निकाला कि 'प्रधान सेनापति एक हजार सैनिकोंको साथ लेकर मंगलबेड़्या पहुँचें और श्रीदामाजीको तुरंत गिरफ्तार करके मेरे सम्मुख उपस्थित करें।' बस आज्ञाकी देर थी, एक मुसलमान सेनापति दल-बलसहित मंगलबेड़्या जा पहुँचा और उसने सूबेदारके घरको घेर लिया। उस समय श्रीदामाजी सर्वलोकाधिपति भगवान् श्रीपाण्डुरंगकी पूजा-अर्चामें व्यस्त थे। बाहरसे उन्हें सेनाके

आगमनकी सूचना दी गयी, पर वे अपने अनन्य प्रेमास्पद प्रभुके ध्यानमें उसी अविचल और निश्चिन्तभावमें बैठे रहे। उन्हें किसीके आने-जानेकी रत्तीभर भी परवा न थी। भगवच्चिन्तन, भगवत्पूजन-जनित आनन्दके सामने किसका भय, किसकी अपेक्षा और किसकी चिन्ता? इधर विलम्ब होते देख सेनापति घरमें घुसकर दामाजीको जोर-जोरसे पुकारने लगा। श्रीदामाजीकी धर्मपत्नीने आगे बढ़कर निर्भयतासे उत्तर दिया—'वे अभी पूजा-पाठ कर रहे हैं। थोड़ी देर बाद आपसे मिल सकते हैं।' मदान्ध अधिकारीने झिड़ककर कहा—'मैं पूजा-पाठकी परवा नहीं करता, अभी मिलूँगा। बतलाओ, वह है कहाँ?' भगवान्‌के प्रति कहे हुए तिरस्कार-वचन साध्वीके लिये असह्य हो उठे। उसने उत्तेजित स्वरमें कड़ककर कहा—'चुप रहिये। अधीर होनेकी कोई आवश्यकता नहीं। जबतक उनका नित्यकर्म नियमानुसार पूरा न हो जायगा तबतक लाख प्रयत्न करनेपर भी मैं किसीको उनके पास जानेकी आज्ञा न दूँगी! हमारे लिये भगवत्पूजाके समान कोई भी दूसरा काम महत्त्वपूर्ण नहीं है।' पतिव्रताके शब्द काम कर गये। अधिकारीका बल, अभिमान सब कुछ लुप्त हो गया, उसकी मुखाकृति निस्तेज हो गयी। उसने धीमे स्वरसे कहा—'अच्छा, तो आप उन्हें मेरे पास आनेकी सूचना दे दें।'

भक्तिमती साध्वी पतिदेवकी सेवामें उपस्थित हुई। श्रीदामाजी उस समय प्रभुके ध्यानमें मग्न थे। थोड़ी देरमें पूजा समाप्त हुई। पतिव्रतादेवीने सारी कथा श्रीदामाजीको निःशंकभावसे कह सुनायी। सेनाके सहसा आगमनसे श्रीदामाजीको इस बातका निश्चय हो गया कि इन सबका एकमात्र कारण भण्डारका लुटवा देना ही है। परंतु वे अपनी स्थितिसे किंचिन्मात्र भी विचलित न होकर पत्नीसे कहने लगे—'हमें चिन्ता करनेकी कोई आवश्यकता नहीं। भगवान्‌का प्रत्येक विधान दयासे पूर्ण होता है—उसके आदि, मध्य और अन्तमें संसारकी

मंगलकामना ओत-प्रोत रहती है। क्या हम बादशाहके भयसे, बन्धनके डरसे अपनी असहाय प्रजाको प्राणान्त-दु:खोंमें सहायता न देकर अपने कर्तव्य-पालनसे विमुख हो जायँ? हमने अपने धर्मका पालन किया है, भगवान् श्रीपाण्डुरंगकी प्रसन्नता प्राप्त करनेकी चेष्टा की है। अब बादशाह भले ही कठोर-से-कठोर दण्ड दें; कोई चिन्ता नहीं—वरं अधिक प्रसन्नता है।' इतना कहकर वे हँसते हुए बाहर निकल आये। अधिकारी बलात् किसीसे प्रेरित-सा होकर वहाँ बैठा हुआ था। श्रीदामाजीकी तेजपूर्ण, शान्त, सौम्य मुखाकृति देखकर सेनापतिका क्रोध सर्वथा विलीन हो गया। वह बड़ी नम्रतासे बोला—'बादशाहने आपकी सेवामें यह आज्ञापत्र भेजा है और आपको शीघ्र बुला लानेका मुझे आदेश दिया है।' भक्त दामाजीने प्रसन्नतापूर्वक उत्तर दिया—'मैं आपके साथ चलनेको तैयार हूँ—केवल एक बार घरमें स्त्रीसे मिल आनेकी आज्ञा दीजिये।' सेनापतिकी स्वीकृति पाकर वे घरके अन्दर गये। स्त्रीको अपने बन्धनका समाचार सुनाकर उससे विदा माँगने लगे। भक्त-महिलाके मुखपर इस संवादको सुनते ही आनन्दकी रेखा खिंच आयी। उसने पतिदेवके चरणोंमें प्रणाम करके कहा—'नाथ! भगवान् पण्ढरीनाथ जो कुछ करते हैं सो हमारे कल्याणके लिये ही करते हैं। भगवत्कृपासे आपको एकान्त-सेवनका अवसर मिलेगा—अपने कर्तव्य-पालनका सुन्दर पुरस्कार प्राप्त होगा। मैं आज अपना परम सौभाग्य समझती हूँ कि प्राणाधारके गलेमें संकट-सुमनोंका मनोहर हार सुशोभित होगा। चिन्ता केवल इतनी ही है कि यह दासी आपकी चरण-सेवासे वंचित रहेगी।' दामाजीने अपनी सहधर्मिणीके साहस और भगवत्प्रेमकी मन-ही-मन सराहना कर प्रेमपूर्वक उससे विदा ली।

× × × ×

बाहर आते ही भक्तके दोनों हाथ बेड़ियोंमें कस दिये गये। अणु-अणुमें अपने आराध्यदेवके दर्शन करनेवाले भक्तको बेड़ियोंके बन्धनमें

क्या कष्ट होता? उन बेड़ियोंकी पारस्परिक रगड़से निकलनेवाली ध्वनिके साथ भगवन्नामकी धुन मिलाकर दामाजी सेनापतिके पीछे-पीछे चलने लगे। गोवलकोण्डेके मार्गमें पण्ढरपुर पड़ता था। भक्तकी इच्छा हुई कि भगवान् श्रीपाण्डुरंगके दर्शन कर कृतार्थ होऊँ। सेनापतिकी सम्मतिसे उन्होंने मन्दिरका रास्ता लिया। हृदय-सरोवरमें आनन्दकी लहरें उठ रही थीं। शरीर रोमांचित हो रहा था। आँखें प्रेमाश्रुओंसे डबडबा आयीं। मन्दिरमें प्रवेश करते ही उन्हें भावावेश हो गया। प्रेममें इतने निमग्न हो गये कि उन्हें अपने शरीरकी सुधितक न रही। कुछ समय बाद सँभलकर उन्होंने भगवान्‌की सेवामें अपने भाव-पुष्प इस प्रकार भेंट किये, 'जीवनधन! आपने इस सेवकको इस रूपमें देखना चाहा! मैं आपकी इच्छाके अधीन हूँ—आपकी प्रसन्नतामें प्रसन्न हूँ, नाथ! अन्यायी राजाके अन्न-भक्षणका आपने यह ही फल दिया! मैं इसे बुरा क्यों मानूँ, दयानिधे! इस अधमको आपकी चरण-सेवामें लगनेका—आपका भव-भय-हारी पावननाम स्मरण करनेका ऐसा सुन्दर सुयोग कहाँ मिलता? सरकारी नौकरीके मोहको छोड़ देना, प्रभो! मेरे लिये असम्भव था। आपने दयापूर्वक बुढ़ापेमें इस सेवकको अपने अकुतोभय चरणोंमें बुलाकर मेरा बड़ा उपकार किया। नाथ! मैं किन शब्दोंमें आपकी कृपाका आभार मानूँ? जिस बादशाहके द्वारा आपने अपनी कृपाका उपहार भेजा है, उसके प्रति किस वाक्यावलीमें अपना कृतज्ञभाव प्रकट करूँ प्राणनाथ!' इतना कहते-कहते उनकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह निकली, गद्‌गदवाणी हो जानेसे वे आगे कुछ न बोल सके! सेनापतिने देर हो जानेके भयसे दामाजीको जोर-जोरसे पुकारना शुरू कर दिया। बेचारे सेनापतिको राजाद्वारा कोई उलाहना न मिले—इस भावनासे वे तुरन्त मन्दिरके बाहर निकल आये। भगवान्‌की विश्वमोहिनी मूर्तिका ध्यान करते हुए वे सेनापतिके पीछे-पीछे चलने लगे।

× × × ×

दोपहरका समय था। बेदरका[1] बादशाह सिंहासनपर बैठा हुआ सूबेदारकी, कैदी सूबेदारकी बाट देख रहा था! ज्यों-ज्यों देरी होती जा रही थी, त्यों-ही-त्यों उसकी अधीरता और क्रोध बढ़ते जा रहे थे। इतनेमें ही एक काला-कलूटा ग्रामीण परंतु तेजस्वी पुरुष लँगोटी पहने राजदरबारमें आ पहुँचा। उसकी किशोर अवस्था और श्याम छविकी मनोहरताको देखकर लोग मन्त्रमुग्ध-से हो गये। उसके कन्धेपर एक काली कम्बल और हाथमें एक छोटी-सी लकड़ी थी। वह निर्भयतापूर्वक बादशाहके सामने उपस्थित होकर दूरसे ही जोहार कर विनयपूर्वक बोला, 'बादशाह सलामत! यह चाकर अपने स्वामी दामाजी पन्तके यहाँसे मंगलबेड्यासे आ रहा है।' दामाजीका नाम सुनते ही बादशाहकी भौंहें धनुषकी तरह खिंच गयीं। वह उत्तेजित होकर बोल उठा, 'क्या नाम है तेरा?'

'माँ-बाप सरकार! मेरा नाम बिट्ठू है। मैं श्रीदामाजीके अन्नसे पला हुआ चमार हूँ।'[2]

'यहाँ क्यों आया?'

'अपराध क्षमा हो, अकालमें अपनी प्यारी प्रजाको भूखों मरते देख मेरे मालिकने आपके कोठारका गल्ला बाँट दिया। मैं उसीका सारा दाम चुकाने आया हूँ। आप कृपा करके उसे ले लें और खजानेमें दाखिल करवाके मुझे रसीद दिलवानेकी कृपा करें।'

यह सुनकर बादशाहके आश्चर्यका ठिकाना न रहा। वह किंकर्तव्यविमूढ़-सा होकर अपने कियेपर पश्चात्ताप करने लगा। वह मन-ही-मन अपनेको धिक्कारकर कहने लगा—'हा! मैंने दामाजी-सरीखे सच्चे सेवकपर बिना सोचे-समझे बेईमानीका लांछन लगाया और उसे

१-मुलवर्गा (निजाम हैदराबाद)-के पास बेदर नामक स्थान है।

२-जोहार मायबाप जोहार। मां दामाजीचा लेंकेवळा महार।

(मराठीपद)

गिरफ्तार करनेके लिये व्यर्थ ही इतनी बड़ी फौज भेजी!' पश्चात्तापके साथ-साथ बिट्ठूकी मोहिनी आकृति देख-देखकर उसके हृदयमें एक प्रकारका अद्भुत आनन्द हो रहा था। उसने उत्सुकतापूर्ण हर्षित नेत्रोंसे पूछा—'भैया बिट्ठू! रुपये कहाँ हैं?'

बगलमेंसे एक छोटी-सी थैली निकालकर बिट्ठू चमारने कहा, 'लीजिये आप इसे जमा कराके मुझे शीघ्र ही रसीद दिलानेकी कृपा करें। मुझे जानेमें देर हो रही है।'

बादशाह तो बिट्ठूके मनोहारी मुखमण्डलको देखकर चकित और मुग्ध हो गया। बादशाहपर जादू-सा हो गया! उसके नेत्र उस चमार सेवककी रूप-सुधाका अनवरत पान करनेमें लग गये। उसकी इच्छा थी कि बिट्ठू यहीं खड़ा रहकर इन प्यासी आँखोंको इस अनुपम और अलभ्य लाभको लूट लेनेका अवसर देता रहे। बिट्ठूने जल्दी करनेका तकाजा जारी रखा, पर बादशाहको उसे अपने सामनेसे दूर करनेकी भावनासे बड़ा दुःख अनुभव होता था। आखिर उसने छाती कड़ी करके कहा—'अच्छा, प्यारे बिट्ठू! ये रुपये वहाँ जमा कराके मुझसे मिलते जाना।' बिट्ठू अब खजानेमें पहुँचा। वहाँ उसके रूपका जादू खजानचीपर चढ़ बैठा। वह नेत्रोंसे उसे देखता जाता था और हाथोंसे रुपये गिनता जाता था। ज्यों ही थैली खाली करके रुपये खजानेमें डालता त्यों ही वह थैली ऊपरतक भर जाती। अब तो खजानची आश्चर्य-सिन्धुमें बुरी तरह गोते खाने लगा। एक ओर आश्चर्यपूर्ण लीला और दूसरी ओर रूपका जादू! बेचारा हैरान हो गया। उसने बड़ी कठिनाईसे जादूगर बिट्ठूसे पिण्ड छुड़ाया। अन्तमें द्रव्य-प्राप्तिकी रसीद लेकर वह सेवकोंका सेवक बिट्ठू चमार दर्शनके लिये अधीर बादशाहके सम्मुख उपस्थित हुआ। उसके पहुँचते ही बादशाहने पूछा—'बिट्ठू! क्या तुमको रसीद मिल गयी?' बिट्ठूने कहा—'हाँ माँ-बाप सरकार! मिल गयी। अब मुझे आज्ञा दीजिये, मैं अपने घरका

रास्ता लूँ। बड़ी देर हो गयी। मेरे मालिक चिन्ता करते होंगे।' बादशाहने रसीदपर अपनी सही करके राज्यकी मुहर लगवाकर रसीद बिट्ठूको दी और दीवानसे कहकर बड़े सम्मानपूर्वक दामाजीको लानेके लिये सरदार दौड़ाये। परन्तु बिट्ठूको चले जानेकी आज्ञा देनेकी शक्ति बादशाहमें नहीं थी। वह तो चाहता था कि दिन-रात इसी चमारकी चरण-सेवामें अपने-आपको बेच डालूँ। पर वह लीलाधारी नट तुरन्त वहाँसे चलता बना।

× × × ×

इधर श्रीदामाजी पण्ढरपुरसे बहुत आगे चले आये थे। एक दिन प्रात:काल वे स्नानादिसे निवृत्त होकर एकान्त स्थानमें पूजा-पाठ करनेको बैठे। पाठके लिये अपनी एकमात्र सम्पत्ति श्रीमद्भगवद्गीताको उन्होंने हाथमें उठाया। उसके पन्नोंको इधर-उधर करनेपर उन्हें एक चमकदार सुन्दर कागज मिला। उत्सुकतापूर्वक उसे खोलकर पढ़ने लगे। उसमें सुवर्णाक्षरोंमें लिखा था, 'अपने भण्डारके अन्न-सम्बन्धी रुपये चुकती भर पाये।' उसपर स्वयं बादशाहके हाथकी सही देखकर भक्तके आश्चर्यकी कोई सीमा न रही। इतने अधिक रुपये किसने कैसे दे दिये—इस बातका रहस्य उनकी समझमें न आ सका! आखिर पूजा करनेकी उत्कण्ठाने उन्हें इस रहस्यको समझनेके लिये अवसर ही न दिया। ज्यों ही पत्रको समेटकर पूजाके लिये तैयार हुए त्यों ही बादशाहके भेजे हुए दूत पत्र लेकर सरदारके पास आ पहुँचे। दामाजीकी बन्धन-मुक्तिका संवाद पढ़ते ही सेनापतिने उनकी सारी बेड़ियाँ तोड़ डालीं और स्वयं उनके चरणोंमें मस्तक टिकाकर वह प्रेम और श्रद्धापूर्वक बार-बार प्रणाम करने लगा। उन्हें राजसी वस्त्र पहनाकर सेनापति सिपाहियोंके साथ नगरकी ओर चल पड़ा।

× × × ×

बिट्ठू चमारके चले जानेके बाद बादशाह बेचैन हो गया,

उसका खाना-पीना सब छूट गया। वह उस चमारके वियोगमें अधीर होकर पागल-सा बन गया। 'बिट्ठू! बिट्ठू!!' की पुकारसे राजदरबारमें बड़ा कौतूहल छा गया। बादशाहने अपने मनहर बिट्ठूको ढूँढ़ लानेकी आज्ञा दी। पर बिट्ठूका मिलाप इतना सुलभ कहाँ, वह तो कभीका कहीं चलता बना था! फिर भी राजाज्ञा पाकर उसकी खोजके लिये घुड़सवार निकल पड़े। 'उसका पता नहीं लगता है'— यह सुनकर स्वयं बादशाह भी 'बिट्ठू कहाँ है?' 'बिट्ठू कहाँ है?' की पुकार मचाता हुआ राजधानीसे बाहर निकल पड़ा। लोगोंके आश्चर्य आदिकी कुछ भी परवा न कर जब वह थोड़ी दूर गया तो सामनेसे श्रीदामाजी आते हुए दीख पड़े। उनको देखते ही वह तुरंत दौड़कर वहाँ जा पहुँचा। प्रेमपूर्वक उनको गलेसे लगाकर कहने लगा—'दामाजी! बतला दो। इस पापीको बतला दो, बिट्ठू कहाँ गया? मुझे एक बार उसके सुन्दर मुखड़ेको मनभर निहार लेने दो! बस, दामाजी! देर न करो। मेरे प्राण निकल रहे हैं।' दामाजीने विस्मित होकर पूछा—'हुजूर! कैसा बिट्ठू? मेरा उससे क्या सम्बन्ध? मेरी उससे क्या जान-पहचान?'

'वही आपका सेवक चमार? उसीके हाथ तो आपने भण्डारके रुपये जमा करवाये थे। वह कम्बल और लकुटीधारी सेवक आपहीका तो था! क्या जान-बूझकर आप अनजान बनते हैं? क्या इस अधमको अपनी कृपासे कृतार्थ न करेंगे?'

अब तो दामाजी सब रहस्य समझ गये। उनके नेत्र जलप्रपात बन गये—उनका शरीर पुलकित हो उठा। वाणी गद्गद हो गयी। इसी प्रेम-विभोर अवस्थामें वे जोरसे गा उठे—

हर! हर! विट्ठल जगदुद्धार। जाहला महार मजसाठीं॥ ध्रुव०॥
धन्य बेदरीचा बादशाय। त्याचा केला मीं अन्याय।
धान्य लुटण्याचा उपाय। पुर्ण अपाय मजसाठीं॥ १॥

षडगुणैश्वर्य श्रीभगवान। सांडुनि देवपणाचा अभिमान।
पायीं घालुनि तुटकी वहाण। नेसला जीर्ण लंगोटी॥ २॥
माथाँ बांधुनि चिंध्यामार। काली काम्बली खाँद्यावर।
मुखानें म्हणत असे जोहार। काला दोर निज कण्ठी॥ ३॥
ऐसें कां केलें देवा। माझ्या सुकृता चा ठेवा।
महार झालासि रे माधवा। लाउनि वणवा मजसाठीं॥ ४॥
ज्याचें धान्य लुठिलें जाण। तो तरि घेतां माझा प्राणा।
दामा म्हणे गुणनिधान.............................जग जेठी॥ ५॥

शिव! शिव! जगत्‌का उद्धार करनेवाले भगवान् बिट्ठलको आज मेरे लिये चमार बनना पड़ा। बेदरीके बादशाहको धन्य है। मैंने तो उसके साथ अन्याय किया था। धान लुटवाकर मैंने अपने लिये पूर्ण हानिकर कार्य किया था, परन्तु मेरे लिये षड्-ऐश्वर्य-सम्पन्न भगवान्‌ने अपने ईश्वरत्वको भुलाकर कैसा वेष बनाया! आपने पैरोंमें फटी जूतियाँ पहनीं, कमरमें जीर्ण लँगोटी धारण की, सिरपर चिथड़ोंकी पगड़ी पहनी, कन्धेपर काली कम्बल डाली, गलेमें काला डोरा पहना और मुखसे जोहार-जोहार पुकारते हुए वहाँ पहुँचे। भगवन्! मेरे नाथ! आपने वह क्या किया? आप तो मेरे सारे सुकृतोंके परम फल हैं। हा माधव! आपने इस नीचके लिये चमारका बाना स्वीकार किया, मैं तो इसी आगसे जल रहा हूँ। नाथ! मैंने जिसका अन्न लुटवाया था, वह मेरे प्राण लेनेके सिवा और क्या करता? फिर हे गुणोंके आगार जगदीश्वर! आपने इतना कष्ट क्यों उठाया?

इतना कहकर दामाजी मतवाले-से हो 'पाण्डुरंग-पाण्डुरंग' पुकारने लगे। दयामय भगवान्‌ने बादशाह और दामाजी दोनोंको पुनः दर्शन दे कृतार्थ किया! धन्य प्रभो, आपकी भक्तवत्सलता!

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त मणिदास माली

श्रीजगन्नाथपुरीमें मणिदास नामक एक माली रहता था। फूल और फूलोंकी माला बेचकर मणिदास कुटुम्बका पालन करता था। लोकदृष्टिमें अशिक्षित होनेपर भी मणिदास सच्चा शिक्षित था। सच्चे शिक्षितके दो लक्षण प्रधानतया होते हैं—दीन-दुःखी प्राणियोंपर दया करना और पाप छोड़कर भगवान्‌का भजन करना। भगवान्‌के दरबारमें वही बड़ा है जो दुष्कर्मोंका त्याग करके भगवत्-स्मरण करता है तथा संसारके सब प्राणियोंको भागवतका स्वरूप मानकर सबकी निःस्वार्थ सेवा करना अपना कर्तव्य समझता है, चाहे वह संसारकी दृष्टिमें दरिद्र, तिरस्कृत और पतित ही क्यों न हो। मणिदास अपनी थोड़ी-सी आमदनीका ज्यादा हिस्सा गरीबोंकी सेवामें—भूखे प्राणियोंके पेट भरनेमें लगा देता, बचे-खुचेपर अपना और कुटुम्बका निर्वाह करता और अपने मन और जीभको भगवान्‌के भजनमें लगाये रखता। इससे वह सभी स्थितियोंमें सुखी रहता; अपना सर्वस्व भगवान्‌को सौंप देनेवाला निश्चिन्त होकर निश्चित आनन्दका भोग न करे तो दूसरा कौन करे?

कुछ समय बाद दैवकी प्रेरणासे मणिदासके एक-एक करके सभी स्त्री-पुत्रोंका देहान्त हो गया। मणिदास इसे विपत्ति समझकर घबड़ाया नहीं, उसने इसको ईश्वरका आशीर्वाद समझा और इसके लिये ईश्वरका धन्यवाद करता हुआ मन-ही-मन कहने लगा—'अहा, दयालु प्रभुने बड़ी ही कृपा की, मेरा सारा बोझ हलका कर दिया। स्त्री-पुत्रोंको अपना मानकर मेरा मन उनमें फँसा रहता था, श्रीहरिने मेरे कल्याणके लिये अपनी चीजोंको वापस ले लिया, हे जगदीश्वर! आपकी दयाको धन्य है, मुझे आपने दुनियाकी गुलामीसे छुड़ा लिया। मैं आजतक विषयोंका दास था, मोह-मदिराके नशेमें परम प्रेममय, परम दयामय

प्रभुकी सेवाको भूल रहा था। आज आपकी अपार कृपासे मुझे कर्तव्यका ज्ञान हो गया। प्रभो! अब आप आशीर्वाद दीजिये, जिससे मेरे शेष जीवनका प्रत्येक पल केवल आपकी सेवा और गुण-नाम-संकीर्तनमें बीते।'

क्या सुन्दर भाव है! जो पुरुष या स्त्री जगत्‌के भोगोंकी—स्त्री-स्वामी, पुत्र-कन्या, धन-वैभव, यश-कीर्ति, जीवन-मृत्यु आदिकी प्राप्तिमें उन सब वस्तुओंको प्रभुकी सम्पत्ति समझकर उनपर अपना स्वामित्व या ममत्व न जमाकर ईमानदार और कर्तव्यपरायण सेवककी भाँति उनकी निःस्वार्थभावसे सेवा और सँभाल करते हैं एवं उन सब पदार्थोंके अपने पाससे चले जानेपर प्रभुकी चीजें प्रभुके पास चली गयीं, अब प्रभुने हमारे लिये जो दूसरा कार्य नियत किया है वही करना परम धर्म है, ऐसा मानकर परम सन्तोष-आनन्दके साथ प्रभु-भजनमें संलग्न रहते हुए प्राप्त कर्तव्यका पालन करते हैं, वे ही पुरुष या स्त्री वास्तवमें भक्त कहलानेयोग्य हैं। जो सांसारिक विषयोंके प्राप्त होनेपर सुख और उनके चले जानेपर दुःखका अनुभव कर सुखमें भगवान्‌को धन्यवाद देते और दुःखमें कोसते हैं, वे सच्चे भक्त नहीं हैं, क्योंकि उनकी दृष्टिमें भगवान्‌की अपेक्षा भोगोंका महत्त्व अधिक है।

मणिदासने प्रभुकी प्रेरणा समझकर अपने मनको प्रभुके स्मरणमें लगा दिया, संसारकी प्रीति और ममताको असार जानकर सबके सार श्रीहरि-नामका आश्रय ले लिया। साधुके वेशमें अब मणिदास अपना सारा जीवन भजनमें बिताने लगा। उषाकालमें ही नहा-धोकर भगवान्‌का ध्यान करनेके उपरान्त मणिदास हाथोंमें करताल लेकर श्रीजगन्नाथजीके सिंहद्वारपर आकर खड़ा हो जाता और करतालध्वनिके साथ अति प्रेमपूर्वक श्रीहरि-नामका कीर्तन करता। कभी-कभी तो कीर्तनकी मस्तीमें वह नाचने लगता। इसके बाद मन्दिरका सिंहद्वार खुलते ही वह अन्दर जाकर पतितपावन श्रीजगन्नाथदेवजीकी मूर्तिके

पास, गरुड़स्तम्भके पीछे खड़ा होकर मन भरकर श्रीभगवान्‌के दर्शन करता, बारम्बार साष्टांग प्रणाम करता और अति दीनभावसे नम्र गद्गद वाणीसे स्तुति करता—'हे दीनदयालो! आपकी दयाकी बलिहारी। नाथ! बस, इस प्रकार आपके श्रीमुखका दर्शन करते-करते ही मेरी मृत्यु हो। प्रभो! आप मेरे प्राणोंके प्राण हैं, मुझ-सरीखे कंगालोंके आप ही पारसमणि हैं। आपके सिवा मेरा और कोई न तो है और न हो सकता है। मुझ निराधारके आधार आप ही हैं, मैं आपकी ही शरण हूँ।'

इसके बाद मणिदास कीर्तन करने लगता। कीर्तनके रंगमें मस्त होकर वह नाचने लगता। नाचते-नाचते तन्मयताकी अवस्थामें कभी वह ठीक श्रीजगन्नाथजीके पास जहाँ चन्दनका कठौता रखा रहता है, वहाँतक चला जाता, फिर गरुड़के पास लौट आता। उस समय उसके शरीरमें आठों सात्त्विक भावोंका उदय हो जाता। वह कभी हँसता, कभी रोता, कभी चुप हो जाता, कभी ऊँचे स्वरसे गाता, कभी स्तुति करता, कभी प्रणाम करता और कभी जय-जयकार करने लगता। वह स्तुति करता हुआ कहता—'हे नाथ! हे श्रीकृष्ण! आपकी जय हो, जय हो। हे वनमाली! बलिहारी है आपके सौन्दर्यकी। आपके वक्षःस्थलपर कमलोंका हार लटक रहा है, आपके गलेमें विविध प्रकारके सुगन्धित पुष्पोंकी मालाएँ शोभा पा रही हैं, आपके प्रत्येक अंगमें रत्नोंके अलंकार झलमला रहे हैं, कानोंमें मकराकृति कुण्डल हैं, मस्तकपर रत्नमुकुट सुशोभित हो रहा है। आपके चन्द्रवदनको देखते ही भक्तका हृदय आनन्दसे भर जाता है। आपके खिले हुए श्वेत कमल-जैसे मनोहर नेत्र मानो भक्तोंको भवसागरसे पार उतारनेवाले पुल हैं, आपके दोनों हस्तकमल समस्त जगत्‌का अशेष कल्याण करनेमें लगे हुए हैं। आपके धारण किये हुए शंख, चक्र, गदा आदिको देखते ही नेत्र शीतल हो जाते हैं। भक्तोंकी रक्षा करनेमें सदा व्यग्र रहनेवाले तथा

उन्होंने कथा रोककर उसे डाँटना शुरू किया। परंतु वहाँ सुनता कौन? कथावाचकजी बक रहे थे, वह अपनी मस्तीमें नाच रहा था। कथावाचकजीका गुस्सा और भी बढ़ गया। अब श्रोताओंने भी साथ दिया और गालियोंके साथ ही मणिदासपर थप्पड़ भी पड़ने लगे। बहुत देरतक यह अत्याचार चला। अन्तमें मणिदासको जब बाह्य ज्ञान हुआ तो वह भौंचक-सा रह गया। कुछ ही समयमें उसे सारी बातोंका पता लग गया। उसके मनमें प्रणयकोप हुआ, वह चुपचाप वहाँसे निकलकर एक मठमें जाकर पड़ रहा। उसने मन-ही-मन कहा—'प्रभुके सामने यदि मुझे प्रभुकी कथा कहने-सुननेवाले मारते हैं तो मैं वहाँ क्यों जाऊँ, शायद प्रभु यही चाहते हों।' कथावाचकजीने अपनी विजय समझी। उन्हें यह पता नहीं था कि भगवान् विद्यापर नहीं रीझते, वह तो प्रेमके भूखे हैं। जिस हृदयमें प्रेम होता है, वही भगवान्‌का निवास होता है।

दिन बीत गया। सूर्यनारायण अस्ताचलको पधारे। मन्दिरमें सन्ध्याकी आरती हुई, परंतु मणिदास नहीं गया। आज उसने अन्न-जल भी ग्रहण नहीं किया। मन्दिरकी सेवा समाप्त हुई, भण्डार बन्द हो गया और सबके बाहर चले जानेपर पट बन्द कर दिये गये।

पुरीके नरेश अपने महलमें सोये हैं। अकस्मात् उन्होंने देखा मानो स्वयं भगवान् श्रीजगन्नाथजी प्रकट होकर उनसे कह रहे हैं—'राजा! तू बड़ा बेखबर है, तुझे यह भी खबर नहीं कि तेरे राज्यमें—अरे! मेरे मन्दिरमें क्या हो रहा है? मेरा प्रेमी भक्त मणिदास मन्दिरमें करताल बजाकर नाचा करता है और मुझे आनन्द दिया करता है। आज तेरे कथावाचकने उसे मारकर मन्दिरसे निकाल दिया है। उसके कीर्तननादको सुने बिना आज मेरा आनन्द फीका हो रहा है। मेरा मणिदास मन्दिरके बाहर मठमें भूखा-प्यासा पड़ा है। तू स्वयं वहाँ जा और आइन्दा उसके कीर्तनमें कोई विघ्न न हो, ऐसा प्रबन्ध कर। जब वह करताल बजाकर प्रेमानन्दमें मस्त हो मेरे सामने नाचेगा, तभी मुझे आनन्द आवेगा। देख,

अब आगेसे कोई कथावाचक वहाँ कथा न बाँचा करे, कथाकी व्यवस्था श्रीलक्ष्मीजीके मन्दिरमें हो, मेरा सभामण्डप तो मेरे प्रेमी भक्तोंके भजन-कीर्तनके लिये ही सुरक्षित रहे।' अहा! आनन्दसागर भगवान्‌की करुणा तो देखिये, वे भक्तके आनन्दसे आनन्दित होते हैं।

उधर मठमें पड़े हुए मणिदासने देखा, अकस्मात् परम प्रकाश हो गया और उसमेंसे भगवान् श्रीजगन्नाथजीने प्रकट होकर उसके सिरपर हाथ फिराते हुए स्नेहपूर्वक कहा—'बेटा मणिदास! अरे तू भूखा क्यों रहा? देख, आज मैंने भी उपवास किया है। उठ, जल्दी भोजन कर।' मणिदासको बाह्य ज्ञान हो गया। उसने देखा महाप्रसादका थाल सामने रखा है। दयामयकी दया देखकर मणिदासका प्रणयाभिमान उतर गया।

इधर राजाकी नींद टूटते ही उसने विचार किया, यह कैसा स्वप्न था। क्या सचमुच श्रीजगन्नाथ भगवान्‌ने ही आज्ञा दी? राजा श्रद्धालु था, उसने उसी समय इसकी जाँच करना उचित समझा। घोड़ा मँगवाया गया, राजा उसपर सवार होकर सीधा मन्दिरकी तरफ चला। मन्दिरके सामने मठमें जाकर देखा, मणिदास पड़ा हुआ है। प्रातःकाल हो गया था, राजाने सादर प्रेमपूर्वक सम्भाषणसे मणिदासके मनको खींच लिया। साधु दयालु हुआ ही करते हैं। मणिदास राजी हो गया। राजा उसे साथ लेकर सभामण्डपमें आया और बड़े आदर-सत्कारके साथ मणिदासको वस्त्रालंकार पहनाकर कहने लगा—'मणिदास! तू धन्य है, अरे, वह ऊँची जाति किस कामकी, जिसमें भगवान्‌का प्रेम नहीं? तुझे और तेरे माँ-बापको धन्य है। आज तू मेरे सामने करताल बजाकर नृत्य कर, तेरे नृत्यसे प्रभुको भी आनन्द होगा और मैं भी अपने नेत्र और कर्णोंके द्वारा कीर्तन-रसका पान कर कृतकृत्य होऊँगा।'

मणिदासने करताल लेकर प्रेमसे अधीर हो कीर्तन आरम्भ किया और अत्यन्त आनन्दसे पूर्ण होकर दीनबन्धुकी स्तुति करते हुए मनोहर नृत्य किया।

राजाकी आज्ञासे कथावाचकजीको उसी दिनसे वहाँ कथा बाँचना बन्द कर देना पड़ा। मन्दिरके नैर्ऋत्य कोणमें स्थित श्रीलक्ष्मीजीके मन्दिरमें कथाकी व्यवस्था कर दी गयी, जो अबतक चालू है। सभा-मण्डप भक्तोंके प्रेम-पूरित कीर्तन-नृत्यके लिये खुला छोड़ दिया गया।

भक्त मणिदास जीवनभर वहीं कीर्तन करते रहे और अपने प्रेमसुधाकी धारासे सहस्रों नर-नारियोंको अमरता प्रदान कर अन्तमें श्रीजगन्नाथजीकी सेवाके लिये दिव्यधामको पधार गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त कूबा कुम्हार

भक्तके हृदयसे भगवान्‌की मोहिनी मूर्ति कभी दूर नहीं होती। वह अपने-आपको भुलाकर भगवान्‌के प्रेममें मतवाला रहता है। जाति-पाँति, कुल-धर्म, लोक-परलोक सबको भक्त अपने भगवान्‌पर निछावर कर देता है। वह सोते-जागते, उठते-बैठते सदा-सर्वदा अपने परम प्रियतम भगवान्‌का ही नाम-गुण-गान किया करता है। ऐसा भक्त जगत्‌को पावन करता है, भवसागरमें गोते खाते हुए अनेक प्राणियोंको पार कर देता है। वह स्वयं तरता है और लोगोंको तारता है, ऐसे ही एक तन्मय भक्तकी कथा सुनाकर आज लेखनीको पवित्र करना है। राजपूतानेके किसी गाँवमें कूबा नामक एक भक्त हो गये हैं। कूबाजी जातिके कुम्हार थे। मिट्टीके बरतन बनाकर बेचना आपका पुश्तैनी पेशा था। परिवारमें आपके पुरी नाम्नी धर्मशीला पत्नी थी। महीनेभरमें मिट्टीके सिर्फ तीस बरतन बनाकर उसीपर स्त्री-पुरुष अपना जीवन-निर्वाह करते थे। बाकी सारा समय भगवान्‌के गुणगान और नाम-स्मरणमें लगाते। सत्य बोलना इनके जीवनका व्रत था, क्षमा और शान्ति तो मानो इनके अन्दर मूर्तिमान् होकर विराजती थीं; हर्ष-शोक, लोभ और उद्वेगको इनके हृदयमें कभी स्थान नहीं मिलता। ये सदैव ही परम आनन्दमें मग्न हुए भगवान्‌का निष्काम भजन करते और घरपर आये हुए अतिथियोंकी भगवद्भावसे सेवा किया करते थे। उनके हृदयमें यह दृढ़ विश्वास था कि सुख-दुःखादि भोग कर्मोंके फल और मायारचित हैं, इनसे आत्माका कोई सम्बन्ध नहीं है। इसीसे ये सदा समभावसे आनन्दमें रहते थे।

कूबाजीका जीवन बड़ा ही पवित्र था, थोड़े-से मिट्टीके बरतनोंसे मिलनेवाले पैसोंपर ही उन्हें अतिथिसेवा और अपना जीवन-निर्वाह करना पड़ता था, इससे उनके घर अन्न-वस्त्रकी प्रायः कमी ही रहा

करती थी, परंतु उन्हें इस बातकी कोई परवा नहीं थी। वे सदा सन्तुष्ट रहते थे, उनका अन्न इतना पवित्र था कि उसे एक बार खा लेनेवाले भी भक्त बन जाते थे।

भक्तवत्सल भगवान् भक्तवर कूबाजीके द्वारा अपनी भक्तिका प्रचार कराना चाहते थे, इससे आपने एक लीला की। दो सौ साधुओंका एक दल भजन-कीर्तन करता हुआ कूबाजीके गाँवमें पहुँचा। साधुओंने गाँवके लोगोंसे कहा कि 'भाइयो! साधुओंकी मण्डली भूखी है, कोई उदार सज्जन हमलोगोंको भोजनका सामान दे दे तो बड़ा उपकार हो।' गाँवमें सेठ-साहूकार बहुत थे, परंतु लोगोंने साधुओंको कूबाका नाम बतला दिया। धनका सदुपयोग किसी बिरले मनुष्यके हाथोंसे ही होता है, नहीं तो तीनोंमेंसे एक गति होती है या तो मनुष्य धनको भोगोंमें लुटाकर पाप-संचय करता है या जीवनभर साँपकी तरह उसकी रक्षा कर अन्तमें हाथ पसारे चला जाता है अथवा बीचमें किसी कारणवश धन नष्ट हो जाता है। घर आये साधु-अतिथियोंका सत्कार करना बड़े पुण्यका फल है।

साधु-मण्डली कूबाजीके घर पहुँची और वहाँ जाकर उसने 'सीताराम' की ध्वनि की। भगवान्के प्यारे नामकी गगनव्यापिनी ध्वनिको सुनकर कूबाजीका शरीर पुलकित हो गया। वे दौड़कर बाहर आये। साधु-मण्डलीको देखकर उनका हृदय आनन्दके आवेशसे द्रवित हो गया। उन्होंने सबको साष्टांग दण्डवत् कर कहा—'आज मेरा अहोभाग्य है जो आप महानुभावोंके दर्शन हुए, कृपा करके कुछ सेवा फरमाइये।' साधुओंके प्रधानने कहा—'साधु बड़े भूखे हैं, इनके लिये जल्दी सामानका प्रबन्ध होना चाहिये।' कूबाजीने बड़े आनन्दसे आज्ञाको सिर चढ़ाया, परंतु घरमें तो एक छटाक भी अन्न नहीं था। दो सौ आदमियोंको कहाँसे खिलावें! कूबाजीने मन-ही-मन भगवान्को याद किया। तदनन्तर वे एक महाजनके यहाँ जाकर कहने लगे कि 'सेठ साहेब! मेरे घर दो सौ महात्मा अतिथि आये हैं; उन्हें खानेका सामान दीजिये। सामानकी कीमत मैं आप चाहेंगे

वैसे ही अदा कर दूँगा।' महाजन कूबाजीकी निर्धनताके साथ ही उनकी सत्यवादिता और टेकसे पूरा परिचित था। महाजनने कहा, 'भाई! मुझे एक कुआँ खुदवाना है, तू अपने हाथों सारा कुआँ खोद देनेका वादा करे तो मैं साधुओंके लिये अभी पूरा सीधा दे दूँगा।' भक्त कूबाजीने महाजनकी शर्त स्वीकार कर ली। महाजनने चावल, दाल, आटा, घी आदि सामान दिलवा दिया। कूबाजीने खुशीके साथ सामान लाकर साधुओंको दे दिया। साधुवेषधारी भगवान् कूबाको अचल भक्तिका आशीर्वाद देकर मण्डलीसहित चले गये।

साधुओंके जाते ही बातके पक्के कूबाजी अपनी पतिव्रता स्त्री पुरीसमेत सेठके यहाँ जाकर कुआँ खोदनेके काममें लग गये। कूबा कुआँ खोदते जाते और उनकी स्त्री मिट्टी फेंकती जाती थी। हरिनामकी ध्वनि निरन्तर दोनों करते रहते। बहुत दिनोंतक इसी प्रकार खोदनेपर अन्तमें एक दिन कुएँमें जल निकल आया। जल बहुत ही मीठा था; परंतु नीचे बालू बहुत ज्यादा होनेके कारण ऊपरकी जमीनको कोई सहारा नहीं रह गया, इससे एक दिन जब कूबाजी नीचे उतरकर कुछ काम कर रहे थे कि अचानक ऊपरकी सारी मिट्टी धँसकर उनपर गिर पड़ी। 'पुरी' तो दूर चली गयी थी, परंतु कूबाजी मिट्टीके नीचे दब गये। पुरी रोने लगी। हो-हल्ला सुनकर गाँवके लोगोंके साथ महाजन भी वहाँ आ पहुँचा। कूबाजीको मिट्टीके ढेरके नीचे दबा जानकर सभीको बड़ा दुःख हुआ। मिट्टी निकालना एक दिनका काम नहीं था, तबतक श्वास रुककर कूबा मर जायँगे, इस बातको सोचकर लोगोंने पुरीको समझाना-बुझाना शुरू किया। उन्होंने कहा—'देखो, उपाय करते हैं; मिट्टी निकलनेतक बच गया तो बड़ी अच्छी बात है, नहीं तो क्या उपाय है? तुम घर जाकर भगवान्‌का भजन करो, भावी ऐसी ही थी।' कुछ सहृदय लोगोंने आश्वासन देते हुए खाने-पीनेका सामान पहुँचा देनेका भी वचन दिया, परंतु सती स्त्रीका दुःख इन बातोंसे कैसे मिटता?

इतनेमें भीड़मेंसे एकने कहा कि वह तो बड़ा भक्त था। उसपर ईश्वरका इतना कोप क्योंकर हुआ? दूसरेने कहा, यह घटना तो होनी थी, उसके प्रारब्धका फल था, परंतु भगवान्को अपने भक्तकी रक्षा तो जरूर करनी चाहिये थी। तीसरेने कहा कि धर्म-धर्म चिल्लानेवाले मूर्खोंकी यही दुर्गति हुआ करती है; इसपर उन मुफ्तखोरोंको खिलानेकी धुन न सवार होती तो आज इसकी क्यों ऐसी दशा होती। चौथेने कहा, रखा क्या है भगवान्की भक्तिमें! इस तरह लोग अपनी-अपनी रुचिके अनुसार मनमानी चर्चा कर रहे थे। अन्तमें कूबेकी पत्नी पुरीको समझा-बुझाकर लोग अपने साथ ले जाकर उसके घर पहुँचा आये। पुरीके दु:खका दूसरोंको कैसे अनुभव होता? वह बेचारी घर पहुँचकर आँसुओंकी धारासे शरीरको भिगोने लगी।

गाँवके लोग इस दुर्घटनाको भूल गये। ममताके बिना कौन किसको याद रखता है? दिन जाते देर नहीं लगती। एक वर्ष बीत गया। बरसातमें पानीके साथ बहकर आनेवाली मिट्टीसे कुएँका गड्ढा भी भर गया। उधरसे कुछ यात्री जा रहे थे। रात हो जानेसे उन लोगोंने वहीं डेरा लगाया। रातको उन्हें अचानक जमीनके अन्दरसे करताल, मृदंग और वीणाके साथ हरि-कीर्तनकी मधुर ध्वनि सुनायी दी। वे आश्चर्यमें डूब गये। रातभर वे उसी प्रकार ध्वनि सुनते रहे, उस ध्वनिका इतना प्रभाव पड़ा कि उन लोगोंने भी मस्त होकर कीर्तन करते रात बितायी। सबेरा होते ही उन्होंने रातकी घटना गाँववालोंको सुनायी। पहले तो उनको विश्वास नहीं हुआ, परंतु जब लोगोंने जमीनपर कान टेककर सुना तो उन्हें भी वही ध्वनि सुनायी दी। अब तो उनके अचरजका पार नहीं रहा; बात-की-बातमें आगकी तरह चारों ओर यह खबर फैल गयी। आस-पासके गाँवोंतकके हजारों स्त्री-पुरुष, वृद्ध-बालक भजनकी ध्वनि सुननेको वहाँ इकट्ठे हो गये। राजाके कानतक बात पहुँची, वह भी अपने मन्त्रियोंसहित वहाँ आया। भजनकी ध्वनि सुनकर उसने गाँववालोंसे सारा इतिहास जानकर

सैकड़ों आदमियोंको धीरे-धीरे मिट्टी निकालनेमें लगा दिया! कुछ ही घण्टोंमें मिट्टी निकल गयी, कुआँ साफ हो गया। भीतरका दृश्य अद्भुत था, सौभाग्यशाली राजासहित सभी लोग उस मनोहर दृश्यको देखकर चकित हो गये। लोगोंने देखा, एक ओर निर्मल जलकी धारा बह रही है। भगवान् श्रीहरि, जिनका नील कमलके समान सुन्दर वर्ण है, चारों भुजाओंमें शंख-चक्र-गदा-पद्म धारण किये हुए हैं, पीताम्बरकी शोभा अनुपम है, मधुर मुसकराते हुए आसनपर विराजमान हैं। भक्तवर कूबाजी उनके सामने आनन्दमें मतवाले होकर गुणगान करते हुए नाच रहे हैं, उनके नेत्रोंसे प्रेमाश्रुओंकी धारा बह रही है, तनकी कुछ भी सुधि नहीं है, दिव्य बाजे बज रहे हैं, जिनकी मधुर ध्वनिसे सारा आकाश गूँज रहा है।

यह दिव्य दृश्य देखकर सबके अन्तःकरणमें श्रद्धा, भक्ति और प्रेमकी बाढ़ आ गयी। धर्म और भगवान्‌के निन्दक भी प्रेमके प्रवाहमें बह गये। राजाने हाथ जोड़कर साष्टांग प्रणाम किया। भगवान्‌की मूर्ति अचानक अन्तर्धान हो गयी। राजाने कूबाजीको बाहर निकलवाकर लोगोंसे कहा कि देखो यह कोई साधारण पुरुष नहीं हैं,सब लोग इनके चरणोंमें प्रणाम करो। सबने कूबाकी चरणधूलि मस्तकपर चढ़ायी।'

कूबाजी घर आये। पत्नीने भक्त पतिको पाकर परमानन्द लाभ किया। थोड़े ही कालमें कूबाजीकी कीर्ति-सौरभ सब तरफ फैल गयी। दूर-दूरके लोग उनके दर्शन और उपदेशसे लाभ उठाने लगे। राजा तो प्रतिदिन नियमसे उनके दर्शनको आता था।

कहते हैं कि कूबाजीकी भक्तिके प्रतापसे एक बार अकालके समय लोगोंको प्रचुर अन्न मिला था और भी अनेक बातें उनके जीवनमें हुईं। अनेकों स्त्री-पुरुष उनके संगको पाकर भवसागरसे तर गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त परमेष्ठी दर्जी

अवश्य ही मनुष्य इस जन्ममें नीच वर्णसे उच्च वर्ण नहीं बन सकता; परंतु भक्तिके प्रतापसे भगवत्प्रेमको अथवा भगवान्‌को प्राप्तकर वह सर्वपूज्य महान् सन्त बन सकता है। सामाजिक सम्बन्ध दूसरी चीज है और भगवान्‌के साथ जीवका आत्मिक सम्बन्ध दूसरी। यह आत्मिक सम्बन्ध सभीका है, जो इस सम्बन्धको पहचानकर भगवान्‌को अपना परम सुहृद्, परम उपास्य, परम गति, परम आश्रय, परम धन, परम पिता जान लेता है, वही भगवान्‌का जन है। ऐसा भगवज्जन किसी भी जातिका हो, कुछ भी पेशा करता हो, वह अपनी जातिमें रहता हुआ, अपने उसी पेशेके द्वारा भगवान्‌की पूजा करता है; न उसे जाति बदलनेकी आवश्यकता है और न पेशा बदलनेकी। जाति बदली भी नहीं जा सकती। भक्तका प्रत्येक कर्म भगवदर्थ होता है और भगवान्‌के प्रेममें मस्त हुआ वह उसीमें परम सन्तुष्ट और परम तृप्त रहता है। यह हरिभक्तिरूपी कल्पलता जाति, कुल, विद्या और वैभव आदि विषयोंमें अपनेको पहाड़से भी ऊँचा माननेवाले मनुष्यके हृदयको स्पर्श नहीं करती। यह उसीको प्राप्त होती है जो कैसी भी बाहरी स्थितिमें रहकर भी अभिमानशून्य हो। अकिंचनताकी नीची भूमिमें ही इसे आनन्द मिलता है। यह वहीं अंकुरित होती और फूलती-फलती है। संसारमें ऐसे बहुत ही थोड़े मनुष्य हैं जो इस भक्तिकल्पलताकी शोभा देखते और इसे प्राप्त करते हैं। अधिकांश प्राणी तो इसकी कल्पना ही नहीं कर सकते। आज एक भगवत्-रसिक दर्जीकी जीवन-कथा लिखी जाती है।

अबसे प्रायः चार सौ वर्ष पहले दिल्लीमें परमेष्ठी नामका एक दर्जी रहता था। उसका शरीर कुबड़ा और काले रंगका था, पर गुणमें वह पूरा था। हृदयमें भगवद्भक्ति भरी थी और हाथमें कारीगरी। वह

सिलाईका काम करता था। उसमें और भी अनेक सन्तोचित गुण थे। वह शूद्र होनेपर भी जितेन्द्रिय था, दरिद्र होनेपर भी उदार था, श्रमजीवी होनेपर भी सदा आनन्दमें रहनेवाला था। कभी झूठ नहीं बोलता था। जीवहिंसा भूलकर भी नहीं करता था और सारे जगत्‌में भगवान् वासुदेवको व्याप्त समझकर सबसे प्रेम करता था।

परमेष्ठी भगवान्‌की अपार महिमापर विचार करता-करता कभी प्रेमावेशमें बेसुध हो जाता। कपड़े सीनेके समय ऐसी दशामें उसके हाथमें सुई, सूत और कपड़ा ज्यों-का-ज्यों रह जाता। वह देहसे मर्त्यलोकमें रहनेपर भी मनसे पवित्र वैकुण्ठलोकमें विचरता। उसकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बहने लगती। इस प्रकार जलमें खिले हुए नवीन कमलकी भाँति घण्टोंतक वह निश्चल बैठा रहता।

परमेष्ठीकी स्त्री विमला धर्मपरायणा, रूप-गुण-सम्पन्ना तथा बड़ी ही पतिव्रता थी। उसके एक पुत्र और दो कन्याएँ थीं। पुत्र-कन्याओंमें भी माता-पिताके गुण उतर आये थे। इससे परमेष्ठीके मनमें तनिक भी सांसारिक अशान्ति नहीं थी। इस प्रकार यद्यपि उसे समस्त सांसारिक सुख प्राप्त थे तथापि वह उनमें आसक्त नहीं था। भगवान्, भगवद्भक्त तथा भगवन्नाम-स्मरणमें उसे अपार प्रीति थी। भगवान्‌का नाम-संकीर्तन तो उसे बहुत ही अच्छा लगता। उसे जब कभी कुछ समय मिलता, वह तुरंत भगवान्‌के भजनमें रत हो जाता। थोड़ा-सा अवसर पाते ही वह भगवान्‌का पवित्र कीर्तन करने लगता, गाते-गाते उसका गला रुँध आता, वह स्तम्भित होकर पसीने-पसीने हो जाता और उसकी आँखोंसे आनन्दाश्रुकी धारा बहने लगती। प्रेमके इन सात्त्विक भावोंसे उसका शरीर पूर्ण हो जाता। अहा! उस समय उसकी आनन्दमयी मूर्ति देखकर कोई नहीं कह सकता था कि वह दर्जी है। उस समय तो सभी लोग उसे धन्यवाद देते, उसकी प्रशंसा करते तथा उसका कृपापात्र बननेका प्रयत्न करते।

भगवद्भक्त होनेके साथ-साथ वह अपने जातीय धन्धेमें भी बड़ा दक्ष था। उसके तैयार किये हुए कपड़े जो कोई देखता अवश्य प्रशंसा करता। वह सिलाईका काम इतना महीन और सफाईके साथ करता था कि उस समय उसकी बराबरीका कारीगर दिल्ली शहरमें दूसरा नहीं था। इससे शहरके सभी अमीर-उमरा तथा स्वयं बादशाह उससे हर एक प्रकारके कपड़े सिलवाकर उसे मनचाहा इनाम देते थे।

एक बार ऐसा हुआ कि बादशाहके सुवर्णसिंहासनके ऊपर दोनों ओर दो गलीचे बिछाये गये। बादशाह अपने दोनों पैर उनके ऊपर रखकर बैठता। परंतु वह उसको पसंद नहीं आये। इसलिये उसने दो बढ़िया तकिये तैयार करानेके लिये बेशकीमती कपड़ा बनवाया तथा उसमें सोनेके तारे, हीरे, माणिक और मोती जड़वाये। बादशाहको वह कपड़ा बहुत पसंद आया और वह उसे बारम्बार देखकर मन-ही-मन कारीगरकी प्रशंसा करने लगा।

पहले कहा जा चुका है कि परमेष्ठी एक सुनिपुण दर्जी था और स्वयं बादशाहका उसके ऊपर विश्वास था, इसलिये उसने शीघ्र ही उसे बुलवा भेजा। परमेष्ठी बादशाहके पास आया और सलाम करके सामने खड़ा हो गया। बादशाहने उससे कहा कि 'ओ दर्जी! तू यह वेशकीमती हीरे-मोतियोंसे जड़ा हुआ कपड़ा ले जा और इसके दो तकिये बना ला, देखना कारीगरीमें किसी तरहकी कमी न रहने पावे और इसके ऊपरका एक भी फूल दब न जाय। जा, इसे जल्दी तैयार करके ले आ; यदि मुझे तेरा काम पसन्द आया तो मैं तुझे निहाल कर दूँगा।'

परमेष्ठीने 'जहाँपनाह! जो हुक्म' कहकर झुककर सलाम किया और वहाँसे घर आया। स्नान-भोजनसे फुरसत पाकर वह बादशाहके तकिये सीने बैठा और थोड़े ही समयमें उसने दोनों खोल तैयारकर बढ़िया इत्रकी सुगन्धभरी रूई उसमें भर दी और तकिये तैयार कर दिये।

बहुत ही बढ़िया इत्र होनेके कारण परमेष्ठीका सारा घर सुगन्धसे भर गया। उसके ऊपर जड़े हुए सोनेके तारे और जवाहिरात खिल उठे, हीरे-माणिकोंसे वह जगमगा उठे। ऐसे तकियोंको रखनेके लिये परमेष्ठीके घरमें स्थान कहाँ था। वह इन्हें शीघ्र बादशाहके यहाँ ले जानेके लिये उठा, परंतु तुरंत ही एक दूसरे नवीन विचारमें पड़ गया।

जैसे-जैसे तकियोंमें मनोहर सुवास आने लगी और जैसे-जैसे उनके ऊपरकी हीरे-माणिककी अपूर्व जगमगाहट उसकी आँखोंमें आने लगी, वैसे-ही-वैसे वह सोचने लगा—'अहा! क्या ऐसे अपूर्व तकिये एक सामान्य मनुष्यके उपभोगमें आने लायक हैं। उसके उपभोगके अधिकारी तो एकमात्र देवाधिदेव भगवान् वासुदेव ही हैं। अहा! ऐसी वस्तु जो उन्हें अर्पित न हो तो फिर कारीगरी ही किस कामकी? परंतु हे प्रभो! यह मेरी अपनी चीज तो है नहीं, फिर मैं क्या करूँ?' इस प्रकार विचार करते-करते वह सुध-बुध भूल गया, उसकी देहात्मबुद्धि विलुप्त हो गयी। इन्द्रियाँ भी शान्त हो गयीं। अब वह न तो कुछ देखता था; न कुछ सुनता था और न कुछ करता ही था। उसका शरीर इस लोकमें था, परंतु आत्मा इस मृत्युलोकके सुख-दुःखसे अतीत किसी और ही लोकमें पहुँच गयी थी। ऐसी अवस्थामें परमेष्ठीने एक चमत्कार देखा। कई वर्ष पहले एक बार वह जगन्नाथपुरीमें रथयात्रा देखनेके लिये गया था, उस समय उसने श्रीजगन्नाथजीके रथका दर्शन किया था। आज भी वह उसी दर्शनमें लीन हो गया। सेवकगण श्रीजगन्नाथजीको लेकर उल्लसित हुए चले जा रहे हैं, चारों ओर 'जय-जय हरि' की ध्वनि छा रही है, आगे-आगे हजारों उजले घोड़े नाचते-कूदते चले जा रहे हैं, सेवकगण आनन्दपूर्वक एकके बाद एक वस्त्र बिछाते चले जा रहे हैं, श्रीजगन्नाथजी एक वस्त्रसे दूसरे वस्त्रपर पधारते हैं, कठिन आघातसे बिछाये हुए वस्त्र फटे जाते हैं।

दैवयोगसे इसी दिन रथयात्रा-उत्सवका दिन था और जिस समय

परमेष्ठी दिल्लीमें बैठा-बैठा श्रीजगन्नाथजीकी रथयात्राका दर्शन कर रहा था; ठीक उसी समय श्रीजगन्नाथपुरीमें भी श्रीजगन्नाथजीकी उपर्युक्त रथयात्रा चल रही थी। भगवत्कृपासे भावनाके आवेशमें परमेष्ठी उस लीलामें इतना लीन हो गया कि उस समय वह मानो नीलाचलमें बैठा हुआ ही प्रभुका दर्शन करता हो।

इतनेमें नीलाचलमें ऐसा हुआ कि जगन्नाथजीके नीचे बिछाया हुआ एक वस्त्र फट गया। सेवक दूसरा वस्त्र लानेके लिये मन्दिरकी ओर दौड़े, परंतु उनको लौटनेमें बहुत विलम्ब हो गया। दिल्लीमें बैठे परमेष्ठीने इस दृश्यको देखा, उससे रहा नहीं गया, उसने शीघ्र ही अपने पासके दो तकियोंमेंसे एक श्रीजगन्नाथजीके अर्पण कर दिया। श्रीजगन्नाथजीने परम प्रीतिपूर्वक उसे स्वीकार किया, इसे देखकर परमेष्ठीके आनन्दका ठिकाना न रहा। वह प्रभुके पादपद्मोंमें दण्डवत् करके दोनों हाथ जोड़कर उठ खड़ा हुआ और उन्मत्तकी भाँति दोनों हाथोंको ऊपर उठा नाचने लगा। श्रीजगदीश्वरकी रथयात्रामें बहुत भीड़ हुई है। धक्का-मुक्की हो रही है। इसीमें परमेष्ठी लोगोंके झुण्डसे कुछ पीछे रह गया, इससे उसे श्रीहरिका दर्शन नहीं हुआ और वह ऐसी भारी भीड़में आगे बढ़ भी नहीं सकता था। बस, इसी समय अचानक उसकी स्थिति पलट गयी और वह चैतन्यावस्थामें आ गया। चैतन्य होते ही आँखें खोलकर देखता है तो कुछ भी नजर नहीं आया। इससे वह गम्भीर विचारमें पड़ गया, उसे बहुत ही आश्चर्य हुआ! वह मन-ही-मन विचार करने लगा—'अहा! क्या यह स्वप्न था? नहीं, नहीं; ऐसा नहीं हो सकता, स्वप्न होता तो मेरे हाथका एक तकिया कहाँ चला जाता? अहा! सर्वान्तर्यामी जगन्नाथ! क्या तुमने मेरे हृदयकी बात जान ली थी? क्या तुमने एक तकिया स्वीकार कर लिया? अहो! मेरा कैसा भाग्य! कैसा सद्भाग्य है!!'

इस प्रकार विचार करते-करते कुछ समयके बाद जब उसको

शरीरकी सुधि हुई तो उसे आनन्दके साथ-ही-साथ कुछ खेद भी होने लगा। वह तुरंत ही विचारने लगा—'अरे! मैंने यह क्या किया? यह तो बादशाहका तकिया था। अहा! उसे बादशाहको न देकर श्रीजगन्नाथजीको दे डाला। मेरा यह कार्य अनधिकार हुआ! अरे, अब मैं बादशाहको क्या जवाब दूँगा?' दूसरे ही क्षण उसने सोचा—'छिः, भला श्रीजगन्नाथजीके सामने दिल्लीश्वर किस गिनतीमें है? जब भगवान्ने स्वयं स्वीकार कर लिया, तब कोई दोष नहीं हो सकता।'

इस प्रकार परमेष्ठी आनन्द और खेदके संग्राममें झूल रहा था, इसी समय बादशाहके सिपाही उसके घरके सामने आकर पुकारने लगे—'अरे दर्जी! बादशाहके तकिये तैयार हुए कि नहीं? जहाँपनाहने दोनों तकिये लेकर जल्दी-से-जल्दी बुला लानेको कहा है, इसलिये चल, जल्दी कर।'

'हाँ-हाँ, हो गये हैं, चलो, चलो।' कहता हुआ परमेष्ठी बाहर आया और सिपाहियोंके साथ एक तकिया लेकर दरबारमें आ पहुँचा और दूरसे ही बादशाहको सलाम करके बादशाहके पास जाकर एक तकिया वहाँ रख दिया और दोनों हाथ जोड़कर खड़ा हो गया। तकियेकी कारीगरी देखकर बादशाह बहुत प्रसन्न हुआ, परंतु उसने एक ही तकिया क्यों दिया, यह बात उसकी समझमें नहीं आयी। वह मुसकराता हुआ बोला—'भाई! तू एक ही तकिया कैसे लाया? दूसरा क्या हुआ? उसे क्या अबतक तैयार नहीं किया? सच-सच बतला।'

परमेष्ठी बादशाहके पैरोंपर गिरकर कहने लगा—'जहाँपनाह! दोनों तकिये तैयार हुए थे, परंतु उनमेंसे एक नीलाचलनाथ श्रीजगन्नाथने स्वीकार कर लिया है। इसलिये यह एक ही आपके पास ला सका हूँ। गरीबपरवर! मैं कभी झूठ नहीं बोलता।' इस बातको सुनकर बादशाह हँस पड़ा और कुछ रुष्ट-सा होकर बोला—'अरे, पागलकी तरह क्या बक रहा है? कहाँ वह नीलाचल और कहाँ यह दिल्ली।

तूने यहाँसे तकिया कैसे दिया और उन्होंने वहाँसे उसे कैसे लिया? अरे, क्या तुझे खबर नहीं कि मैं दिल्लीश्वर हूँ? मेरी दिल्लीमें आकर मेरा तकिया ले जाय, ऐसा दूसरा कौन है? यह ढोंग-ढाँग छोड़ दे और जो कुछ दूसरी बात हो सच-सच कह दे, नहीं तो तेरा बुरा हाल होगा।'

बादशाहकी इस धमकीपर परमेष्ठी हाथ जोड़कर बोला— 'जहाँपनाह! मैं सच कह रहा हूँ। एक तकिया नीलाचलनाथ श्रीजगन्नाथजी ले गये हैं और दूसरा आपके लिये लाया हूँ। हुजूर! मैं सच कहता हूँ। अब आप मुझे मारिये या जिलाइये, यह आपके हाथमें है। परंतु हे गरीबपरवर! जगन्नाथजीने वहाँसे ही तकिया ले लिया, इसमें आपको आश्चर्य ही क्यों हुआ? इसको आपने असम्भव क्यों समझा? श्रीजगन्नाथजी इस अखिल विश्वके नाथ हैं। क्या आपकी यह दिल्ली जगत्के बाहर है? वे विभु हैं। कोई ऐसा स्थान नहीं, जहाँ वे न हों। उनका निवास और उनका धाम भी सर्वदा सर्वत्र है। तब दिल्लीमें उन्होंने तकिया ले लिया, इस बातको आप मिथ्या क्यों मान रहे हैं? बल्कि हे बादशाह! वे प्राणिमात्रके भीतर व्याप रहे हैं और सबके हृदयकी बातको जानते हैं। हम अपने मनमें जो कुछ सोचते हैं उसे भी वे जानते हैं। उसी प्रकार जो अपने शुद्ध अन्तःकरणसे मनके साथ जिस सामग्रीको उन्हें अर्पण करनेकी इच्छा करता है उसे वे परम आनन्दपूर्वक ग्रहण करते हैं। जहाँपनाह! मैं सच कहता हूँ आपका तकिया देखकर मेरा मन बहुत ही व्याकुल हो गया था। उसे देखकर मैं उसे अपने प्रभुको अर्पण करनेके लिये अस्थिर हो उठा था, इसीलिये उन्होंने दया करके उसे स्वीकार कर लिया। हुजूर! आपके मनमें जैसा रुचे वैसा कीजिये, परंतु श्रीजगन्नाथजीने आपका तकिया स्वीकार किया, इससे आप बहुत ही भाग्यवान् हैं।'

इसपर बादशाह अत्यन्त ही क्रोधित हो उठा। वह लाल-लाल आँखें किये अत्यन्त कर्कश स्वरमें बोला—'रे दर्जी! मैं तुझे अब भी

कहता हूँ कि सोच ले। मैं दिल्लीश्वर हूँ। क्या सारे मुल्ककी भक्ति एक तेरे-जैसे मलिन दर्जीमें ही आ गयी है? अरे कोई है? इस दुष्ट दर्जीको हथकड़ी-बेड़ी डालकर तुरन्त अँधेरी कोठरीमें डाल दो और मेरा हुक्म है कि इसे खानेके लिये भी मत दो और इसकी कोठरीका ताला भी मत खोलो। देखता हूँ कि कौन इसका बाप आकर इसे बचाता है। जो जगन्नाथ आकर इसके पाससे मेरा तकिया ले गया है, वही आकर इसे बचावेगा और खाना-पीना भी देगा!'

बादशाहके मुँहसे इतना निकलते ही पहरेदारोंने आकर परमेष्ठीको पकड़ लिया और हथकड़ी-बेड़ी देकर कैदखानेमें ले जाकर एक अँधेरी कोठरीमें डाल दिया और उसके बाहर ताला देकर वहाँ पहरा बैठा दिया। बेचारा परमेष्ठी इस विपदवस्थामें एकमात्र मधुसूदनका ध्यान करने लगा। उसके सामने न कोई दूसरी बात थी और न दूसरा विचार। चिन्तामणिके दरबारमें यह बात एक पलमें पहुँच गयी। भक्तवत्सल तुरंत ही भक्तकी रक्षा करनेके लिये तैयार हो गये और नीलाचलसे दिल्ली शहर आ पहुँचे।

आधी रात बीत गयी है, कैदखानेके पहरेदार अभी जग ही रहे हैं, इसी समय महाप्रभु श्रीजगन्नाथजी परमेष्ठीके कैदखानेके दरवाजेपर आ पहुँचे। पहरेदारोंको मोह-निद्रामें डालकर भगवान्ने अन्दर प्रवेश किया। परमेष्ठीकी कोठरीका द्वार खुल गया, परन्तु परमेष्ठीको इसकी क्या खबर; वह तो तन्मय हुआ भगवान्के नामका चिन्तन करता हुआ रुदन कर रहा था। प्रभुने उस कोठरीमें प्रवेश कर अमृतमय स्वरसे परमेष्ठीको पुकारा।

अहा हा! कैसा मीठा, कैसा मधुर था वह स्वर! अहा! शिशुके कण्ठसे पहले-पहल निकला हुआ 'बा-बा, माँ-माँ' शब्द भी माता-पिताको उतना प्रिय नहीं लगता! उस सुमधुर स्नेह-सम्बोधनको सुनकर परमेष्ठी चकित हो उठा। वह आश्चर्यमें पड़ कह उठा— अहा! इस

दानवपुरीमें देवताओंके अमृतका संचार कहाँसे हो गया? वह आँखें खोलकर देखता है तो नीलकान्तमणिके दिव्य प्रकाशसे उसकी अँधियारी कोठरी प्रकाशमयी हो रही है। देखते-ही-देखते उसके मुँहसे निकल पड़ा—'अरे! अहा, यह क्या?' देखते-ही-देखते उस दिव्य प्रकाशमेंसे श्रीजगन्नाथजीकी मूर्ति दिखलायी देने लगी। परमेष्ठीने अपने चर्म-चक्षुओंसे देखा कि उसके प्राणाराध्य प्रभु प्रसन्नतासे अपने एक वरदहस्तके द्वारा अभयमुद्रासे उसे अभयदान दे रहे हैं और दूसरे हाथसे सुदर्शनचक्र फेर रहे हैं। सुदर्शनचक्र भी आज अतिशय घोर भीषण स्वरूप धारण कर रहा है और जैसे-जैसे वह घूमता है, जान पड़ता है कि प्रलयाग्नि बरस रही है। प्रभुकी कमनीय मूर्तिको देखकर परमेष्ठी परम आनन्दमें निमग्न हो गया। सचेत होते ही वह भगवान्‌के चरणकमलोंमें लोटने लगा और उनके सामने करुणापूर्ण मुखाकृतिसे रोने लगा। प्रभुकी कृपादृष्टिसे परमेष्ठीके बन्धन टूट गये, आनन्द और विस्मयके तरंगोंमें वह तरंगायमान होने लगा। वह कौन है और यह क्या हो रहा है, इसकी उसे सुधि न रही। उसका शरीर स्तम्भित हो गया, उसकी सारी गति बन्द हो गयी। भगवान्‌से उसकी कोई बात छिपी नहीं थी। भगवान्‌के बिम्बोष्ठकी धारामें, कमल-नयनके कोनोंमें मिष्ठ-मधुर हास्यके जो परमाणु खेल रहे थे, वह सब एकत्रित होकर मानो एक बड़े फव्वारेके रूपमें फूट पड़े। श्रीभगवान् एकाएक हँस पड़े और परमेष्ठीको सम्बोधित करते हुए बोले—'परमेष्ठी! जिसको मेरी सहायता है उसे क्या भय है? देख, देख, हे वत्स! जबतक मेरे हाथमें यह सुदर्शनचक्र है तबतक भक्तको लेशमात्र भी भय नहीं हो सकता। दूसरा कोई कितना ही बलवान् क्यों न हो; पर याद रख कि मेरा भक्त सबसे बढ़कर बलवान् है। आ बेटा! आ, मेरे पास आ!!'

परमेष्ठी उनके पास क्या आता? वह तो उनकी करुणाकी विमल धाराके प्रवाहको देखकर अवाक् हो गया और बारम्बार प्रणाम करके

रोने लगा। वह अपनी स्वाभाविक दीनताके वश हो मनमें विचार करने लगा कि 'आह! मैं तो महापापी, महाअधम हूँ। क्या मैं भगवान्‌के समीप जानेयोग्य हूँ?'

भक्तकी दीनता देखकर भक्तवत्सलको विशेष आनन्द हुआ, इससे वे स्वयं उसके पास जाकर अपना वरदहस्त उसके मस्तकपर फेरने लगे। श्रीप्रभुके श्रीअंग-स्पर्शसे परमेष्ठीका अंग-प्रत्यंग अत्यन्त सुन्दर और मनोहर हो गया और वह आनन्द-सागरमें निमग्न होकर अपनेको और अपने प्रभुको भी भूल गया।

इधर भगवान् भी परमेष्ठीको कृतार्थ और बन्धनमुक्त करके बादशाहके शयनमन्दिरमें जाकर उसे स्वप्नमें ताड़न करके श्रीनीलाचल चले गये। तुरन्त ही बादशाह उठ बैठा। उसने चारों ओर देखा, परन्तु कोई दिखायी नहीं दिया, इससे वह चकित हो विचारने लगा—'अरे क्या यह स्वप्न है? नहीं, ऐसा किस प्रकार कहा जा सकता है? मेरा अंग अभीतक धूज रहा है। उसके किये प्रहारके चिह्न अबतक दिखायी देते हैं! अहा! यहाँसे वह क्या हो गया? आश्चर्य! आश्चर्य!! यह तो बड़ी ही विलक्षण घटना दीख पड़ती है!!!'

क्रमशः प्रभात हुआ, बादशाहको चैन कहाँ? उसने तुरंत ही अपने विश्वासी मित्रोंको बुलवाया और उनसे अपने स्वप्नकी बात कह सुनायी। उसके बाद सभी कैदखाने पहुँचे। जाकर क्या देखते हैं कि सभी पहरेदार अभी निद्रामें पड़े हुए हैं और सभी दरवाजे खुले हुए हैं। परमेष्ठीके हाथ-पैरमें बन्धन नहीं है। उसका वह रूप भी नहीं है। उसके शरीरसे दिव्य प्रकाश चमक रहा है। मुखमण्डलमें अपूर्व लावण्य झलक रहा है और वह प्रसन्नतापूर्वक अपने प्राणारामके ध्यानमें मग्न है।

परमेष्ठीका जब ध्यान टूटा तो वह अपने प्रभुको न देखकर बहुत ही व्याकुल हो गया और प्रभुका नाम रटन करने लगा।

परमेष्ठीकी यह अवस्था देखकर दिल्लीपतिको बहुत ही आश्चर्य हुआ। उसके बाद वह उसे नाना प्रकारसे प्रसन्न करने लगा तथा अमूल्य वस्त्राभूषणोंसे उसे विभूषित कर अपने खास हाथीपर बैठाकर बाजे-गाजेके साथ शहरमें ले गया। पश्चात् बहुत-सा धन-रत्न देकर उससे क्षमा माँगी। अब बादशाहने अपनेको धन्य माना। इस अलौकिक घटनाको सुनकर सब मनुष्य आश्चर्यचकित हो उठे। भक्तकी जय-जय-ध्वनिसे सारा शहर गूँज उठा, परंतु यह मान-सम्मान भक्त परमेष्ठीको बिलकुल नहीं रुचा। उसे बहुत लज्जा हुई और प्रतिष्ठाके भयसे वह तुरंत ही दिल्ली शहरको छोड़कर दूसरे देशको चला गया एवं भगवान्के भजन-पूजनमें जीवन व्यतीत करता हुआ अन्तमें परम गतिको प्राप्त हुआ।

बोलो भक्त और उनके भगवान्की जय!

भक्त रघु केवट

रघु जातिका केवट था। श्रीजगन्नाथपुरीसे दस कोसपर बसे हुए पिपलीचटी गाँवमें रहता था। उसके घरमें बूढ़ी माँ और युवती पत्नीके सिवा और कोई न था। रघु रोज सबेरे उठकर जाल लेकर जाता और मछलियोंको पकड़कर उन्हें बाजारमें बेचता। जो पैसे मिलते, उनसे खाने-पीनेका सामान लेकर वह घर लौट आता। पूर्वसंस्कार अच्छे थे, इससे धीवर-जातिका होनेपर भी उसका मन बार-बार भगवान्‌की ओर खिंचता रहता और वह मन-ही-मन बार-बार सर्वशक्तिमान् अनाथनाथ प्रभुका स्मरण किया करता।

मछलियाँ जब उसके जालमें आतीं और तड़पने लगतीं, तब वह बड़े ध्यानसे उनकी ओर देखता। उसके मनमें दयाका संचार होता, अपने कार्यपर ग्लानि होती; परन्तु जीवन-निर्वाहका और कोई साधन न सोचकर वह इन भावोंको भुलानेकी चेष्टा करता। सभी तो ऐसा करते हैं, भगवान्‌ने मछलियोंको बनाया ही इसीलिये है, नहीं तो ये खानेके काममें क्यों आतीं। मछलियोंके स्पर्शेन्द्रिय नहीं होती, इससे इन्हें काटनेमें दुःख नहीं होता। इस तरहकी मछलीमारोंकी दलीलोंको यह मनमें लाता, परंतु फिर भी उसे संतोष नहीं होता। धीरे-धीरे रघुके मनमें वैराग्य उत्पन्न होने लगा। उसने एक दिन एक सुयोग्य गुरुसे दीक्षा ली। तुलसीकी माला गलेमें पहन ली। रोज प्रातःकाल स्नान करके भगवान्‌के नामका जप करना, भागवत सुनना और सत्संग करना उसका काम हो गया। यों करते-करते उसका अन्तःकरण शुद्ध होने लगा, उसको स्पष्ट प्रतीत होने लगा कि जीवमात्रमें भगवान् विराज रहे हैं। अब जीव-हिंसासे उसका मन बहुत ही हट गया। उसने पहले बहुत जीव-हिंसा की थी और अब भी जातिके नाते तथा उदर-पूर्णार्थ उसे मन मारकर थोड़ी-बहुत हिंसा करनी ही पड़ती थी, इसके लिये उसके

हृदयमें पश्चात्तापकी आग जल उठी। उसने सोचा कि 'मैं कितना बड़ा पापी हूँ, जिसका जन्म ही जीवोंको कष्ट पहुँचानेके लिये हुआ माना जाता है।' वह एकान्तमें रोकर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा—'हाय दीनानाथ! तुमने मुझे क्यों इस धीवर-जातिमें पैदा किया? जीवहत्या ही मेरी जीविका है। हाय-हाय मेरी क्या गति होगी? बेचारी गरीब मछलियाँ, जब मैं उन्हें जालमें पकड़ता हूँ और काटता हूँ, तब कितनी व्याकुल होती हैं। मैं निर्दय जरा भी उनकी दशापर विचार नहीं करता। हे दयामय! पता नहीं, मेरा कौन-से भयानक दु:खदायी नरकोंमें निवास होगा। क्या मेरे इस हिंसाकलुषित हृदयमें तुम्हारा निवास कभी नहीं हो सकता? क्या तुम इस पापीपर दया नहीं कर सकते? प्रभो! तुम पतितपावन हो, कृपा करो, इस अधमको पापसे छुड़ाकर अपनाओ!'

रघु पश्चात्तापभरे हृदयसे बार-बार इसी प्रकारकी करुण-प्रार्थना करता। सच्ची प्रार्थनामें बड़ा बल होता है। रघुके अन्त:करणमें दैवी भाव आ-आकर जुड़ने लगे। अब मछली पकड़नेका काम उसके लिये दूभर हो गया। धीरे-धीरे वह काम उससे छूट-सा गया। जीवोंके दु:खसे दु:खी हुआ रघु अपने तथा परिवारके भूखों मरनेकी बातको भूल गया।

कुछ दिन तो पहलेके संचित अनाजसे रघुका काम चला; पर वह संचय था ही कितना? थोड़े ही दिनोंमें भोजनका अभाव हो गया। उपवास होने लगे। परंतु उपवासपर कितने दिन मनुष्यका जीवन टिक सकता है? घरमें त्राहि-त्राहि मच गयी। रघु पेटकी ज्वाला और माता तथा पत्नीके तिरस्कारसे जलने लगा। माता तथा पत्नीका दु:ख उसके हृदयको पिघलानेमें कारण हो गया। बेचारा क्या करता। हारकर उसने वज्र-सा हृदय करके जाल उठाया और चला तालाबकी ओर। मनमें बड़ा ही कष्ट हो रहा था। उसने भगवान्‌से मन-ही-मन कहा—'हाय प्रभु! क्या इस अधम केवटके लिये जीवन-निर्वाहका दूसरा कोई धन्धा

नहीं हो सकता? हे दीनबन्धु! मैं क्या करूँ? मुझे अपनी फिक्र नहीं है—वृद्धा माता और निरपराधा अबला स्त्रीका दुःख मुझसे नहीं देखा जाता। उनका त्याग भी मैं होश रहते कैसे कर दूँ? आपने ही तो शास्त्रोंमें परिवारके भरण-पोषणकी आज्ञा दी है। हमलोगोंका भरण-पोषण जीव-हिंसा बिना होता नहीं, अब मैं क्या करूँ?'

यों प्रार्थना करते-करते रघु एक तालाबपर पहुँचा और इच्छा न होनेपर भी माता और स्त्रीके दुःखसे दुःखी होनेके कारण उसने भगवान्‌का नाम लेकर जाल पानीमें फेंका। कुछ देरमें जालमें एक बड़ी-सी लाल मछली आकर तड़पने लगी। उसे तड़पते देखकर रघुके दुःखका पार नहीं रहा। वह सिरपर हाथ रखकर सोचने लगा— 'हाय! मैं बड़ा पापी हूँ। पापी पेटके लिये जीवोंको कितना दुःख देता हूँ।' इतनेमें ही उसको यह बात याद आ गयी कि सभी जीवोंमें भगवान् व्याप्त हैं। वह भावमग्न हो गया। उसे मछलीमें भगवान् दीखने लगे। उसने कहा, यह तो शंखासुरको मारनेवाले साक्षात् मत्स्यभगवान् हैं, भला इनका वध कोई कैसे कर सकता है? इसी अवसरपर फिर उसी भूखी माँ और स्त्रीकी करुणमूर्ति मानो उसकी आँखोंके सामने आ गयी। वह उनके दुःखको देखकर व्याकुल हो गया। उसने दृढ़ हृदयसे मछलीको जालसे बाहर निकाला और सूखी जमीनपर डालकर कहने लगा—'हे मत्स्यरूपधारी! मेरे दुःखकी एक बात सुन! मैं धीवर हूँ, मछली मारना मेरा स्वभाव है, वह किसी प्रकार बदलता नहीं। इसीसे आज तुझे मारना पड़ता है। तू चाहे मत्स्यावतार लेनेवाला हरि हो या और कोई, मेरे हाथसे आज बच नहीं सकता। मेरा यह स्वभाव तैंने ही बनाया है और तुझ-सरीखे जीवोंको मारकर पेट भरनेकी व्यवस्था भी तो तेरी ही की हुई है।'

इतना कहकर रघु दोनों हाथोंसे जोरसे मछलीका मुँह फाड़ने लगा। उसी समय एक अद्भुत चमत्कार हुआ। रघुको उसके अन्दरसे स्पष्ट

सुनायी दिया—'रक्षा कर नारायण रक्षा कर।' रघु चकित हो गया। उसका मन बदल गया, अपूर्व आनन्दसे उसका हृदय भर गया। वह मछलीको उठाकर गहन वनकी ओर चला। वहाँ एक पहाड़ था। पहाड़में छोटे-बड़े सैकड़ों झरने बह रहे थे। उन झरनोंके जलसे वहाँ बहुत-से जलके कुण्ड भरे थे। रघुने वहाँ जाकर एक बड़े-से कुण्डमें मछलीको छोड़ दिया। जलके मिलनेसे मछलीको जितना आनन्द हुआ, उससे कहीं अधिक आनन्द और सन्तोष रघुको हुआ। रघु भगवान्के प्रेममें पागल-सा हो गया, वह इस बातको भूल गया कि मैं माता और स्त्रीको भूखसे तड़पती हुई घरमें छोड़कर आया हूँ। रघु वहीं बैठ गया और हाथ जोड़कर कहने लगा—'मछलीके अन्दरसे यह प्रिय नारायणका नाम मुझको किसने सुनाया? वह एक बार मुझे दर्शन क्यों नहीं देता? केवल शब्दरूप दर्शनसे ही काम नहीं चलेगा। साक्षात् अपनी दिव्य मूर्तिके दर्शन कराने पड़ेंगे। तुम्हारे अमृतमय स्वरोंको सुनकर मैं समझ गया हूँ कि तुम बहुत ही सुन्दर हो, अब तुम कृपा करके अपनी असीम सौन्दर्यमयी छबि मुझे शीघ्र दिखलाओ। एक बार तो दिखला ही दो। मैं यह प्रण करता हूँ कि बिना तुम्हारा दर्शन पाये यहाँसे नहीं उठूँगा।' इस प्रकार कहकर रघु 'नारायण' मन्त्रका जप करने लगा। तीन दिन बीत गये, परंतु रघु नाम-स्मरणमें इतना अधिक तल्लीन था कि उसे समयका कुछ पता ही नहीं लगा। रात-दिन भूख-प्याससे बेखबर रघु नारायणके ध्यानमें तन्मय हो गया। अन्तर्यामी भगवान्से कुछ भी छिपा नहीं रहता। वे भावके भूखे हैं, जहाँ असली भाव देखते हैं, वहीं चले आते हैं। आज 'नारायण' एक वृद्ध ब्राह्मणके रूपमें रघुके सामने प्रकट होकर रघुको पुकारकर कहने लगे—'अरे तपस्वी! तू कौन है? इस घोर वनमें अकेला किस बातके लिये तपस्या कर रहा है, तेरा नाम क्या है? तू किस जातिका है और कहाँ रहता है? यहाँ कबसे और क्यों बैठा है?'

भगवान्‌के वचन सुनते ही रघुकी आँखें खुल गयीं। उसने अपने पास एक वृद्ध ब्राह्मणको खड़े देखकर प्रणाम करके कहा—'ब्राह्मण देवता! आपके चरणोंमें यह दास प्रणाम करता है। मैं कौन हूँ, क्यों बैठा हूँ, इन सब बातोंके जाननेसे आपको क्या प्रयोजन है? आप अपने कामसे पधारिये। बातें करनेसे मेरे कार्यमें विघ्न पड़ता है, अत: क्षमा कीजिये।' रघुकी बात सुनकर ब्राह्मणवेषी भगवान्‌ने कहा—'भाई! मैं तो चला जाऊँगा, परंतु तू इतना तो विचार कर, कहीं मछलीके अन्दरसे भी कोई बोल सकता है? मछलीकी बोली भी तो मनुष्यकी-सी नहीं। तुझे भ्रम हो गया होगा। जब कोई चीज ही नहीं, तब दर्शन किसके होंगे? तू यहाँ व्यर्थ ही क्यों बैठा है?' रघुको ब्राह्मणके वचन सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने सोचा—'इन्होंने मछलीकी घटना क्योंकर जान ली। यदि जान ही ली तो फिर यह ऐसी बातें क्यों कर रहे हैं? शायद मेरी परीक्षा कर रहे हों।' कुछ सोचकर रघुने कहा—'महाराज! मैं क्या इस बातको जानता नहीं कि एक प्रभु ही सब जीवोंमें व्याप्त हैं। व्याप्त ही क्यों, वही अनेक रूपोंमें प्रकट हो रहे हैं। माना कि मैं बड़ा पापी हूँ। जीवोंके खूनसे मेरे हाथ और मेरा हृदय रँगा हुआ है, पर क्या मुझ-जैसे पापीपर भगवान् दया नहीं करते? आप कहते हैं मछलीकी बोली मनुष्यकी-सी नहीं, सो ठीक है। परंतु यह तो बतलाइये, मछलीके शरीरमेंसे कौन बोल रहे हैं? वे बोलनेवाले तो मेरे प्रभु ही हैं। वे कौन-सी बोली नहीं बोल सकते? क्या आप मेरी परीक्षा कर रहे हैं? प्रभो! कृपा करके मुझे ऐसा उपाय बताइये जिससे मुझे उन सर्वव्यापक करुणामय भगवान् नारायणके प्रत्यक्ष दर्शन हों। आप ही तो वे नारायण नहीं हैं, जो मुझे छल रहे हैं? नाथ! प्रकट होइये, अब क्यों इस अधमको तरसाते हैं?'

भक्तकी अचल भक्ति देखकर भगवान् बहुत ही प्रसन्न हुए। उनकी आँखोंमें प्रेमाश्रु भर आये और रघु केवटको कृतार्थ करनेके लिये

वे गम्भीर स्वरसे बोले—'बेटा रघु! तेरी एक निष्ठाको धन्य है। मैं तेरे लिये ही वैकुण्ठको छोड़कर यहाँ निर्जन वनमें दौड़ा आया हूँ। मैंने ही मछलीके अन्दरसे तुझे 'नारायण' नाम सुनाया था। बता, अब तुझे विश्वास हुआ या नहीं।'

रघुने कहा—'भगवन्! आप जो कुछ कहते हैं सो सत्य है, परंतु मैं निपट निर्बोध हूँ। मुझे अभी आपकी भक्तिके प्रतापसे वे दिव्य नेत्र नहीं मिले हैं कि मैं प्रत्येक रूपमें आपको पहचान सकूँ। मेरे सामने तो आप अपने उसी शंख-चक्र-गदा-पद्मधारी चतुर्भुज-स्वरूपसे प्रकट होइये। हे दयानिधे! मैं अन्धा हूँ, पाप-कलुषित-हृदय हूँ; मुझे भक्तिरूपी आँखें दीजिये और परदा उठाकर अपने दिव्य दर्शन कराइये। आपने मछलीके वेशमें दर्शन देकर मुझे अपने घर-बार, कुटुम्ब-देश, आहार-निद्रा आदिके बन्धनसे छुड़ा दिया। अब ब्राह्मण-वेषमें दर्शन देकर क्या प्राण भी छुड़ाना चाहते हैं? अच्छी बात है, जबतक आपके वैकुण्ठविहारी स्वरूपके दर्शन नहीं होंगे, तबतक मैं अन्न, जल ग्रहण नहीं करनेका। हे करुणामय! अब आपने स्वाभाविक करुणाकी प्रेरणासे जाति, कुल, शौच, सदाचार और पुण्य आदिका विचार न करके इस अधमको अपना लिया है, तब फिर अपनी भुवनमोहिनी मूर्तिके दर्शन करानेमें क्यों हिचकते हैं?' यों कहते-कहते रघु भगवान्‌के चरणोंमें लिपट गया।

भक्तकी प्रेमभरी वाणी सुनते ही भगवान्‌ने अपने दिव्य चतुर्भुजस्वरूपसे प्रकट होकर उसे दर्शन दिये और वर माँगनेके लिये कहा। भक्तवत्सल भगवान्‌के दिव्य दर्शन पाकर रघु कृतार्थ हो गया। मुग्धहृदयसे वह टकटकी लगाये दिव्य रूपसुधाका पान करने लगा। वरदान क्या माँगे? उसने नेत्रोंसे आनन्दके आँसू बहाते हुए गद्गद वाणीसे कहा—'अहा! मैं बहुत ही बड़भागी हूँ। मेरे समान भाग्यवान् जगत्‌में दूसरा कौन है? देवता भी जिनके दर्शनको तरसा करते हैं, वे ही वैकुण्ठनाथ प्रभु आज

मुझ अधम हिंसाजीवी धीवरके लिये कुश-कण्टकोंसे भरे इस घोर जंगलमें खड़े हैं। इससे बढ़कर दया और क्या हो सकती है? धन्य है प्रभु आपकी करुणाको और भक्तवत्सलताको! अब मेरे लिये और क्या माँगना और पाना बाकी रह गया? आशीर्वाद दें जिससे मेरा हृदय निरन्तर आपके ध्यानमें ही तल्लीन रहे और ये नेत्र सदा-सर्वदा-सर्वत्र दिव्य मूर्तिके दर्शन किया करें।

भगवान्‌ने और भी वर माँगनेको कहा। अब बेचारा रघु क्या करे! उसने सोचा, भक्ति तथा भगवान्‌के दर्शनसे बढ़कर वरदान और क्या हो सकता है? ये दोनों चीजें तो भगवान्‌ने दया करके दे ही दीं। अब क्या माँगूँ? हाँ, मेरा जीव-हिंसाका स्वभाव पलट जाय, यह बात आवश्यक है। यद्यपि आज मेरे मनमें जीव-हिंसाकी भावना भी नहीं है, परंतु जाति-स्वभाव तथा पूर्वाभ्याससे कदाचित् फिर कभी कोई कुकर्म बन जाय, इसलिये यह स्वभाव ही बदल जाना चाहिये। यह सोचकर उसने कहा—'प्रभो! माँगनेको तो कुछ भी नहीं रह गया—परंतु आपके आग्रहसे मैं एक बहुत छोटी-सी चीज माँगता हूँ। जातिका धीवर होनेके कारण मछली मारना ही मेरा पैतृक स्वभाव है। हमलोगोंको दूसरी बात सूझती ही नहीं। जो बेचारे भूले हुए लोग आपके नामपर या आपकी ही मातृ-मूर्ति जगज्जननीके नामपर यज्ञ या पूजामें मूक पशुओंको मारते हैं, वे तो कामनाके वशीभूत हो वह पापाचरण करते हैं। वे इस बातको भूल जाते हैं कि अपना ही अंग काटनेसे ही कोई प्रसन्न होता हो तो भगवान् भी जीवोंकी हत्यासे प्रसन्न हो सकते हैं।' इसलिये वे जीवहत्या करते हैं। परंतु हमलोगोंका तो धन्धा ही ऐसा है। 'प्रभो! मेरा यह स्वभाव ही छूट जाय; भोजनके लिये मुझे कभी जीव-हिंसा न करना पड़े और अन्तकालमें यह जीभ आपका नाम रटती रहे तथा उस समय आपके दिव्य स्वरूपको नेत्रोंके सामने देखते-ही-देखते मेरे प्राण निकलें। बस, यही वरदान दीजिये।'

भगवान्‌ने भक्त रघुके मस्तकपर हाथ रखकर 'तथास्तु' कहा। भक्त हरि-हरि पुकारता हुआ बेसुध हो गया। भगवान् भी अन्तर्धान हो गये।

प्रभुके अन्तर्धानसे भक्तको एक बार तो बड़ा दुःख हुआ; परंतु उसको तो अब सर्वत्र ही प्रभु दीखने लगे। जैसे पारसके स्पर्शसे लोहा सोना हो जाता है, इसी प्रकार भगवान्‌के स्पर्शसे रघु आनन्दमय बन गया। वह हरिका नामोच्चारण करता हरिमय बना हुआ भगवान्‌की प्रेरणासे घर पहुँचा। घरपर पहुँचते ही गाँवके लोगोंने उसे कोसना शुरू किया। लोग कहने लगे 'तू बड़ा मूर्ख और निर्दयी है। बेचारी अबलाओंको छोड़कर कहाँ मरने चला गया था? हरि-हरि चिल्लाता है, देखेंगे हरि तेरा पेट भर देंगे। बेचारे जमींदार साहेब न होते तो ये दोनों स्त्रियाँ भूखों मर जातीं। तेरे मनमें जरा भी दया नहीं है। देख तो सही, तेरे लिये रोते-रोते इन अबलाओंकी क्या दशा हो गयी है।' रघुने ईश्वरको धन्यवाद दिया। उसने सोचा; मैं घरमें रहता तो जमींदार साहेब मुझे कभी पूछते भी नहीं। मेरे पीछेसे उन्होंने दोनों अबलाओंके लिये अन्नका यथेष्ट प्रबन्ध कर दिया, यह सब मेरे प्रभुकी प्रेरणासे ही हुआ है। रघुने किसीकी बातका कोई जवाब नहीं दिया। लोग अपने-अपने मनका उभारा निकालकर वहाँसे चले गये। रघुने माताके चरणोंमें प्रणाम किया। माता और पत्नी खोये हुए प्यारे पुत्र और पतिको पाकर आनन्दसे अधीर हो गयीं। रघु हरि-स्मरण करने लगा और उन्हें भी भगवान्‌का नाम जपनेके लिये कहा। रघुका इस समय पूरा परिवर्तन हो गया था। माता और पत्नीपर भी उसके वचनोंका बहुत प्रभाव पड़ा। वे भी श्रीभगवान्‌के नामका जाप करने लगीं।

रघु प्रतिदिन बहुत सबेरे उठकर शौच-स्नान करता और भगवान्‌का भजन करता। फिर कीर्तन करता हुआ गाँवमें घूमता। किसीसे कुछ भी माँगता नहीं। परंतु लोग स्वाभाविक ही उसकी ओर आकर्षित होकर उसे बुला-बुलाकर देना चाहते। यह उस अन्तर्यामीकी ही प्रेरणा थी।

रघुको प्रतिदिन बिना माँगे तीनोंके भोजन-जितनी सामग्री अनायास मिल जाती। रघु उसे ले जाकर माताको दे देता। पुत्रको इस प्रकार उस छोटे-से गाँवमें प्रतिदिन बिना माँगे आवश्यक भोजन-सामग्री मिलते देखकर माताके मनमें बड़ा आश्चर्य होता। आनन्द भी होता। माता और पत्नी मिलकर भोजन बनातीं। ठाकुरजीके भोग लगाकर प्रसादरूपमें तीनों प्राणी उसे पाकर प्रसन्नतापूर्वक भगवान्का भजन करते।

भक्त रघु अब पूर्ण साधु-स्वभावको प्राप्त है। किसीसे कुछ भी कहना-सुनना नहीं, किसीके मनमें उद्वेग हो, ऐसी कोई भी चेष्टा करनी नहीं। दिन-रात श्रीहरिका नाम-कीर्तन करना और भगवान्में मनको लगाये रखना, यही उसका काम था। नाम-कीर्तन करते-करते रघुको प्रेम-समाधि हो जाया करती। गाँवके कुछ दुष्ट बालक रघुको छेड़ते, उसके पीछे-पीछे दौड़ते, परंतु रघु कुछ भी जवाब नहीं देता। इससे लड़कोंका साहस बढ़ गया। कुछ बदमाश लड़के गालियाँ देने लगे और एक-दोने तो ढेले फेंकने भी शुरू कर दिये। रघु पहाड़के सदृश अचल था। कोई कुछ भी करे, उस प्रेम-सिन्धुमें डूबे हुएको तो कुछ पता ही नहीं था। रघुकी ऐसी स्थिति हो गयी थी कि उसको जब बाह्य ज्ञान रहता था, तब भी उसपर गालियोंका और मारका कोई असर नहीं होता था। क्रोध, क्षोभ और दुःख मानो उसके हृदयसे सदाके लिये बहिष्कृत हो गये थे। फिर प्रेम-समाधिकी अवस्थामें जब कि बाहरी होश बिलकुल ही नहीं रहता, तो क्रोध या क्षोभ होता ही कहाँसे? परंतु रघुकी इस उदासीनतासे लड़कोंका उपद्रव बहुत बढ़ गया। बिना ही कारण रघुको सताना और मारना गाँवके अवारा लड़कोंके मनोरंजनका सहज साधन बन गया। रघु कहीं भी जाता तो लड़कोंकी टोली अपना काम करती हुई उसके पीछे रहती। भले लड़के तो केवल हँस-हँसाकर ही रह जाते, परंतु बदमाशोंको धूल फेंके और ढेला मारे बिना आनन्द

नहीं आता। गाँवके भले लोग लड़कोंको ऐसा करनेसे रोकते; तब जो अच्छे लड़के होते वे तो अलग हो जाते, परंतु ढीठ लड़के किसीकी भी नहीं मानते। एक दिन रघु गाँवसे भीख लेकर अपने घरकी ओर जा रहा था। इतनेमें ही पीछेसे आकर एक दुष्ट लड़केने उसकी पीठपर एक काँटोंवाला डण्डा मार दिया। रघुने कुछ भी नहीं कहा। अब तो लड़का बार-बार घुमा-घुमाकर डण्डा मारने लगा। रघुका शरीर लहूलुहान हो गया। खूनकी धारा बह निकली, तो भी रघुने अपने मुँहसे एक शब्द नहीं कहा। परीक्षा हो चुकी। अब भक्तोंके योग-क्षेमका वहन करनेवाली भगवती शक्तिने अपना कार्य शुरू किया। रघु कुछ ही आगे बढ़ा था कि उसे मारनेवाला लड़का बेहोश होकर धड़ामसे गिर पड़ा और गिरते ही उसके प्राणपखेरू उड़ गये। लोग एकत्र हो गये। कुछ लोगोंने उसके घर जाकर माँ-बापको खबर दी। घरके लोग दौड़े आये। लड़केको बार-बार उठाकर बैठानेकी चेष्टा की गयी। आखिर नाकके पास रूई रखकर देखा गया तो मालूम हुआ कि श्वास ही नहीं है। माँ-बाप रोने लगे। हाहाकार मच गया। परन्तु इससे क्या होता? माता-पिताको अपने लड़केके दुष्टस्वभाव और निर्दय आचरणोंका पता पहले ही लग चुका था। उन लोगोंने सोचा, अवश्य ही यह निरपराध भक्त रघुको मारनेका फल है। गाँवके लोगोंने भी एक स्वरसे यही कहा। अन्तमें सर्वसम्मतिसे यही निश्चय हुआ कि रघुके घर चलकर उससे प्रार्थना की जाय। भक्त बहुत ही कोमलहृदय होते हैं, उनका चित्त दूसरेका दुःख देखकर सहज ही पिघल जाता है। रघु महान् भक्त है। वह यदि बालकका अपराध क्षमा कर देगा तो लड़का जी उठेगा, इसमें सन्देह नहीं है। यह विचारकर बालकके माता-पिता घरके अन्यान्य लोगोंके साथ मृत शरीरको लेकर रोते-कराहते रघुके घरपर आये और दोनों वृद्ध स्त्री-पुरुष रघुके चरणोंमें पड़कर दीन वाणीसे कहने लगे—'भक्त रघु! हम आज बड़े ही दुःखी हैं। हम

जानते हैं कि हमारा लड़का बहुत ही दुष्ट था और उसने तुमको जो तकलीफें दी हैं वे कभी क्षमाके योग्य नहीं हैं। परन्तु माँ-बापके नाते हम आज सर्वथा निराश्रय हो गये हैं। हम अन्धोंका तो वही एकमात्र लड़का था। उसकी दुष्टताकी ओर देखते तो हम तुम्हें मुँह भी नहीं दिखला सकते, परन्तु तुम्हारी दयालुतापर भरोसा करके हम तुम्हारे सामने रो रहे हैं। अब तुम अपनी ओर देखकर इस अज्ञानी बालकका अपराध क्षमा करो और इसे प्राणदान दो। यह बच्चा नहीं जीयेगा तो हम दोनों भी नहीं जी सकेंगे। तुम भक्त हो, तुम्हारे कोई शत्रु-मित्र नहीं है; फिर इस बालकपर इतनी कठोरता क्यों की गयी?'

रघु वृद्ध दम्पतीको चरणोंमें पड़ते देखकर और उनका करुण-क्रन्दन सुनकर चकित-सा रह गया। उसे अभीतक यह नहीं मालूम था कि उसको मारनेवाला लड़का मर गया है। अब सारी बात समझकर रघुने कहा—'हैं, हैं, आप क्या करते हैं, मैं अधम केवट हूँ, मेरे पैरोंके हाथ न लगाइये।' यों कहकर बड़ी ही विनयके साथ रघुने उन्हें उठाकर बैठाया और कहा—'आप क्या कह रहे हैं? मैंने तो कभी नहीं चाहा कि आपका बालक मर जाय। यदि मेरे कारण ही उसकी मृत्यु हुई है तो वस्तुतः मैं बड़ा ही अपराधी हूँ। मेरा इस अपराधसे कैसे छुटकारा होगा? यह सच है कि उसने मुझको मारा था; परंतु इसमें उसका क्या कसूर था? निजकृत कर्मरूपी कारण हुए बिना ईश्वरके राज्यमें किसीको कोई दण्ड नहीं मिल सकता। मुझे जो यह शारीरिक दण्ड मिला, यह अवश्य ही मेरे किसी पूर्वकृत कर्मका ही फल है। वह तो बेचारा केवल मूर्खतावश निमित्त बन रहा था। हा! परमेश्वर! मैं कैसा अन्यायी और पापी हूँ कि आज मुझ अधमके कारण इन वृद्ध स्त्री-पुरुषोंपर महान् संकट पड़ रहा है। यदि वास्तवमें मेरे मनमें उस बालकके प्रति उसके द्वारा मुझपर मार पड़ते समय भी कोई द्वेष न उपजा हो तो हे प्रभो! दयाकर बालकको जीवन-दान दीजिये।' यों

कहते-कहते रघुकी आँखोंसे आँसुओंकी धारा बह चली। उसने प्रेमावेशमें कहा—'भाइयो! आओ; हम सब मिलकर श्रीहरिनामकी धुन लगावें और बालकसे उठ बैठनेके लिये कहें। इतना सुनकर सबने मिलकर हरिकीर्तन आरम्भ कर दिया। मृत बालकके चारों ओर घूम-घूमकर गाँवके सब लोग कीर्तन करने लगे। रघु केवट प्रेममें पागल होकर नाचने लगा और सब लोग मिलकर बालकको पुकार-पुकारकर उठ बैठनेके लिये कहने लगे। भक्तकी दृढ़ श्रद्धा, भगवन्नामके माहात्म्य और भक्तवत्सल भगवान्‌की कृपाके प्रभावसे देखते-ही-देखते बालक अंग मरोड़कर नींदसे जागनेकी भाँति उठ बैठा। बालकको जीवित देखकर माता-पिताको जो आनन्द हुआ, उसकी कोई सीमा नहीं है। अब सभी लोग प्रेम-मतवाले होकर परमोल्लासके साथ हरि-हरिकी ध्वनि करने लगे। दुष्ट बालककी भी मति बदल गयी, वह भी हरि-कीर्तनमें मत्त हो गया। आनन्दका सागर उमड़ उठा। सब लोग प्रेमानन्द-सुधाका पान करके मस्त हो गये। कुछ समय बाद रघुने सबको भगवत्प्रेमका उपदेश प्रदान करके अपने-अपने घर जानेको कहा। लोग विस्मय और आनन्दमें डूबे हुए घरोंको लौटे। इधर रघु भगवान्‌के भजनमें तल्लीन हो गया।

भगवत्-भजनके प्रतापसे रघुमें इतनी शक्ति आ गयी कि उसके मुँहसे जो कुछ भी निकल जाता, वही सत्य हो जाता। होते-होते देशभरमें रघु केवटकी ख्याति फैल गयी। सभी लोग उसे महान् भक्त और वचनसिद्ध महात्मा मानने लगे। ख्याति बढ़नेके साथ ही भिन्न-भिन्न कामनावाले दर्शनार्थी स्त्री-पुरुषोंकी भीड़ उसके घरपर रहने लगी। रघु इस प्रपंचसे घबड़ा गया। वास्तवमें प्रतिष्ठा और प्रसिद्धि भजनके प्रधान शत्रु हैं। जो प्रभुको भजना चाहते हैं, प्रभुको प्राप्त करना चाहते हैं, उनके लिये तो ये महान् हानिकारक प्रतिबन्धक हैं ही, परन्तु सिद्ध पुरुषोंके लिये भी प्रतिष्ठा और प्रसिद्धिका त्याग ही परम आदर्श

माना गया है। जो साधक प्रतिष्ठाके चक्करमें पड़ जाते हैं, उनका भजन-ध्यान बिलकुल छूट जाता है, वे भगवत्प्राप्तिके मार्गसे सर्वथा गिरकर बहुत दूर चले जाते हैं। रघु केवट बड़ा भाग्यवान् था, इससे उसने इस लोक-प्रतिष्ठाको शूकरी-विष्ठाके समान समझकर सर्वथा त्याग कर दिया। वह घर छोड़कर निर्जन एकान्त स्थानमें रहने लगा। अब उसके चौबीसों घण्टे केवल श्रीभगवान्‌के भजनमें ही बीतने लगे। अपने प्राणाराध्य प्रभुके प्रेममें निमग्न हुआ रघु सब प्रकारसे निश्चिन्त हो गया।

एक दिन रघुको ऐसा भान हुआ मानो नीलाचलनाथ भगवान् श्रीजगन्नाथजी उससे कुछ खानेको माँग रहे हैं। उसके मनमें इससे बड़ा आनन्द हुआ। वह एकान्त स्थानमें भोजन-सामग्री लेकर भगवान्‌को निवेदन करने लगा। भगवान् तो भक्तके अधीन हैं। जहाँ प्रेम देखते हैं, अपना ऐश्वर्य भूलकर प्रकट हो जाते हैं। जहाँ रघुने शुद्ध अन्तःकरणसे भगवान्‌का आह्वान किया, वहीं आप प्रकट होकर हँसते-हँसते उसका दिया हुआ भोग पाने लगे।

इधर ठीक उसी समय पुरीके महाराजने श्रीप्रभुके भोगके लिये नाना प्रकारके उत्तमोत्तम पक्वान्न भोगमण्डपमें भेजे थे। भोगमण्डपसे प्रभुका मूल-मन्दिर कुछ दूर है, इससे भोगमण्डपके रखे हुए दर्पणमें प्रभु-विग्रहका जो प्रतिबिम्ब पड़ता है, उसीके नैवेद्य चढ़ाया जाता है। जब सब सामग्रियाँ आ गयीं, तब पण्डा भगवान्‌को भोग निवेदन करने लगे, परन्तु आश्चर्य कि दर्पणमें उस समय उन्हें प्रभुका प्रतिबिम्ब नहीं दीख पड़ा। दर्पण जहाँ-का-तहाँ था, बीचमें कोई आड़ भी नहीं थी। पण्डाजीने आश्चर्यचकित होकर राजासे कहा कि 'महाराज! इस नैवेद्यमें कुछ-न-कुछ दोष होना चाहिये! नहीं तो प्रभु इसे अंगीकार क्यों नहीं करते? आज प्रभुका प्रतिबिम्ब ही दर्पणमें नहीं पड़ता। अब क्या उपाय किया जाय?' श्रद्धालु राजा पण्डाजीकी बात सुनकर उदास

हो गये और गरुड़स्तम्भके पास जाकर पड़े रहे। पड़े-पड़े बड़े ही खिन्न चित्तसे वे मन-ही-मन प्रभुसे प्रार्थना करने लगे—'हाय प्रभु! मुझसे ऐसा कौन-सा अपराध बन गया कि जिससे आप मेरा चढ़ाया हुआ नैवेद्य स्वीकार नहीं करते? क्या मेरे अपराधसे यह सारी सामग्री ही दूषित हो गयी है? यदि ऐसा ही है तो प्रभो! कृपा करके मुझे प्रायश्चित्त बताइये। हे दीनबन्धो! मुझे किसी प्रकार भी अपराधमुक्त करके आप नैवेद्य स्वीकार कीजिये।'

यों प्रार्थना करते-करते राजाको तन्द्रा-सी आ गयी। उन्होंने स्वप्नमें देखा, प्रभु प्रकट होकर कह रहे हैं—'राजा! तू इतना दुःखी क्यों होता है? क्या मैं इस समय नीलाचलमें था जो मेरा प्रतिबिम्ब पड़ता! मैं तो इस समय पिपली ग्रामके समीप रघु केवटकी कुटियामें भोजन कर रहा हूँ। यद्यपि वह जातिका धीवर है परन्तु उसका मुझपर अकृत्रिम प्रेम है। वह सबसे बढ़कर मुझसे ही प्रेम करता है। मेरे लिये उसने मनसे सर्वस्वका त्याग कर दिया है। वह जबतक मुझे नहीं छोड़ता, तबतक मैं यहाँ आकर तेरा प्रसाद स्वीकार नहीं कर सकता। तू जानता है, पर मैं पक्वान्नका नहीं, पर सच्चे अनन्य प्रेमका भूखा हूँ। मैंने गीतामें स्पष्ट कहा है कि जो भक्त हृदयके प्रेम-भावसे मुझे पत्र-पुष्प-फल-जल कुछ भी अर्पण करता है, मैं स्वयं प्रकट होकर उस प्रेमोपहारको सानन्द स्वीकार करता हूँ। भक्तका भाव ही मुझे खींचनेकी प्रबल डोरी है। यदि तू मुझे अभी यहाँ बुलाना चाहता है तो पिपलीचटीमें जाकर एकान्तवासी मेरे प्रिय भक्त रघुको उसकी पत्नी तथा मातासहित नीलाचलक्षेत्रमें ले आ।'

भगवान् अन्तर्धान हो गये, राजाका सपना भंग हुआ। वह उसी समय घोड़ेपर सवार होकर पिपलीचटी पहुँचे और किसी प्रकार पूछ-ताछकर रघुकी कुटियाका पता लगाया। राजा कुटियाके बाहर खड़े होकर पुकारने लगे। परन्तु वहाँ सुनता कौन? रघु तो इस समय

भक्तवत्सल प्रभुकी सेवाके आनन्दमें मतवाला हो रहा है। वह तन-मनकी सुध भुलाकर प्रभुके प्रेमानन्दका पान कर रहा है, बाहरकी आवाज कौन सुने?

जब बाहरसे पुकारते-पुकारते राजा थक गये, उन्हें कोई उत्तर नहीं मिला, तब निरुपाय होकर राजाने कुटियामें प्रवेश किया। राजा देखते हैं रघु रोमांचित शरीरसे बैठा है, हाथमें ग्रास लेकर मानो किसीके मुखमें दे रहा है। ग्रासका देना तो दीखता है, परन्तु ग्रासग्रहण करनेवाला मुख राजाको नहीं दीखता। वह मानो किसी आवरणसे ढका है। जबतक वह आवरण दूर नहीं होता तबतक उस मुखको कोई भी नहीं देख सकता और आवरण दूर करना किसीके हाथमें भी नहीं है। यह प्रभुके हाथकी बात है। प्रभुके देव-दुर्लभ दिव्य मुखड़ेके यथार्थ दर्शन उसीको होते हैं, जिसको प्रभु कराते हैं—जिसके नेत्रोंसे आवरण हटा लेते हैं। यह मानव-पुरुषार्थसे सिद्ध होनेवाला कार्य नहीं है। जो महानुभाव भक्त संसारके सुख-दुःखोंका देखना छोड़कर सर्वथा सर्वभावसे प्रभुपरायण हो रहते हैं उन्हींको कभी दया करके भगवान् अपना दिव्य दर्शन देते हैं। अस्तु।

कुछ ही देरमें प्रभु अन्तर्धान हो गये। अब रघुकी विचित्र दशा हो गयी। वह जलसे निकाली हुई मछलीके सदृश तड़पने लगा। 'अरे प्रभु! कहाँ चले गये, कहाँ चले गये?' यों पुकारता हुआ रघु रो पड़ा। उसकी आँखोंसे चौधार आँसू बहने लगे। इस दृश्यको देखकर राजा चकित हो गये! उन्होंने मन-ही-मन कहा—'ठीक ही तो है। ऐसा न होता तो प्रभु नीलाचलका राजभोग त्यागकर धीवरके घर क्यों पधारते?' राजाने आगे बढ़कर रघुको उठाकर अपनी गोदमें बैठा लिया और धीरेसे कहा—'धन्य रघुदास, तुम्हें धन्य है! अहा! तुमने प्रभुको वश करनेवाला यह मन्त्र कहाँ सीखा? अब मैं तुम्हें नहीं छोड़ूँगा। चलो अपनी भाग्यवती पत्नी और धन्यजीवन जननीको साथ लेकर नीलाचल

चलकर रहो। तुम्हारी कृपासे नीलाचलनाथकी दया होगी तो मैं भी कृतार्थ हो जाऊँगा।'

अब रघुको होश हुआ। वह अपनेको पुरीनरेशकी गोदमें पड़ा देखकर चकित हो गया। वह जल्दीसे उठकर राजाको प्रणाम करने लगा। परन्तु राजाने उसे रोककर स्वयं उसके चरणोंमें प्रणाम किया और अबतकका सारा हाल सुनाया तथा प्रभुकी आज्ञा सुनाकर उससे सपरिवार नीलाचल चलनेकी प्रार्थना की। प्रभुकी आज्ञा समझकर रघु भी अस्वीकार न कर सका। राजाकी आज्ञासे उसी समय सवारीकी उत्तम व्यवस्था हो गयी। श्रद्धालु भक्त राजा भक्त-परिवारको लेकर नीलाचलमें पधारे। इसी समय भोग-मण्डपके दर्पणमें प्रभुका प्रतिबिम्ब दिखायी दिया। पण्डाजीने आनन्द-विह्वल होकर नैवेद्य निवेदन किया। भक्तवत्सल भगवान्‌की जय-ध्वनिसे मन्दिर गूँज उठा।

पुरीनरेशने श्रीमन्दिरके दक्षिणकी ओर रघुके लिये आवश्यक सामग्रियोंसे पूर्ण सुन्दर घरकी व्यवस्था कर दी। रघु अपनी माता और पत्नीके साथ प्रभुका भजन करता हुआ वहाँ आनन्दपूर्वक रहने लगा और अन्तमें प्रभुकी प्रेरणासे इस लोकका त्याग कर तीनों परम धामको पधार गये।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त रामदास चमार

दक्षिणमें गोदावरीके किनारे कनकावती नामकी एक नगरी थी। रामदास वहीं रहता था। जातिका चमार था, परंतु था अत्यन्त सरल हृदयका, सत्य और न्यायकी कमाई खानेवाला और प्रभुका निरन्तर चिन्तन करनेवाला भावुक भक्त। भक्त रैदासका नाम बहुतोंने सुन रखा है। परंतु रामदास भक्तिमें रैदासजीसे किसी कदर कम न था। रामदासकी पतिव्रता स्त्रीका नाम था मूली। दम्पतीमें बड़ा प्रेम था। इनके एक छोटा लड़का था, वह भी माता-पिताका परम भक्त था। स्त्री-पुरुष मिलकर जूते बनाते और रामदास उन्हें बाजारमें जाकर बेच आता। खरी मेहनतकी मजदूरी सात्त्विक हुआ करती है, ऐसी ही मजदूरीके पैसोंका सदुपयोग होता है और उनसे दाता, ग्रहीता दोनोंके अन्त:करणकी शुद्धि होती है।

तीनों प्राणियोंके पेट भरनेपर जो पैसे बचते, उनसे रामदास अतिथि-अभ्यागतकी सेवा करता और पीड़ित प्राणियोंके दु:ख दूर करनेका प्रयास करता। वह समय-समयपर भगवन्नाम-संकीर्तन सुनने जाया करता और बड़े प्रेमसे स्वयं भी अपने घर कीर्तन करता। कीर्तनमें सुनी हुई यह एक पंक्ति ***'हरि मैं जैसो तैसो तेरो'*** उसे बहुत ही प्यारी लगी और उसके कण्ठस्थ हो गयी। वह निरन्तर इसी पंक्तिको गुनगुनाता हुआ सारे काम किया करता। पंक्तिका मर्म भी उसके हृदयके मर्मस्थलमें प्रवेश कर गया। वह सचमुच अपनेको भगवान्‌का दास और आश्रित समझकर मन-ही-मन आनन्दमें भरा रहता था।

भगवान् तो भावके भूखे हैं, वे श्रद्धारहित वेद-मन्त्रोंके उच्चारणसे प्रसन्न न होकर भक्तकी अस्फुट वाणीके प्रेमपूर्ण अशुद्ध शब्दोंसे प्रसन्न हो जाते हैं। रामदासके विशुद्ध और सरल हृदयसे निकले हुए इस गीत-गोविन्दसे प्रसन्न होकर प्रभुने उसे और भी अपनाना चाहा। कुछ चोर

गहनोंके साथ ही कहींसे एक सुन्दर सुलक्षण स्वर्णयुक्त शालग्रामकी विशाल मूर्ति चुरा लाये थे, पर उन्हें उससे क्या मतलब? उनमेंसे एक चोरके जूते टूट गये थे, उसने सोचा इस पत्थरके बदलेमें जूतेकी जोड़ी मिल जाय तो अच्छा है। भगवत्-प्रेरणासे शालग्रामजीकी मूर्तिको लेकर वह सीधा रामदासके घर पहुँचा और मूर्ति उसे दिखलाकर कहने लगा—'अरे भाई! देख यह कैसा मजेदार पत्थर है, जरा अपने औजारको इसपर घिस तो सही, देख कैसा अच्छा काम देता है, पर इसके बदलेमें मुझे एक जोड़ी जूते देने पड़ेंगे।'

रामदास उस समय दूसरी ही धुनमें था, वह ***'हरि मैं जैसो तैसो तेरो'*** की पंक्ति गुनगुना रहा था और इस बातका अनुभव कर रहा था कि वास्तवमें मुझे भगवान्‌ने अपनी शरणमें ले लिया है, मैं उनका सदाके लिये सेवक बन गया हूँ; इसी परम विश्वासके साथ वह आनन्दपूर्ण हृदयसे उक्त पद गा रहा था और हाथोंसे स्वाभाविक ही जूते सी रहा था। चोरकी आवाज सुनकर वह चौंका, उसके भजनमें भंग पड़ा; उसने समझा कोई खरीदार है, उसने जूतेकी एक जोड़ी चोरके सामने कर दी, चोरने उसे पहनकर दामोंकी जगह वह मूर्ति रामदासके हाथपर रख दी। रामदास अभीतक अर्द्धचेतनावस्थामें था, उसका मन बरबस प्रभुकी ओर खिंचा जा रहा था। उसको दामोंकी बात याद ही नहीं आयी। मूर्तिको उसने अपने सामने रख लिया और उसीपर औजार घिसने लगा। भगवान् शालग्राम बनकर प्यारे भक्तके घर आ गये। रामदास अब उसी मूर्तिपर औजार घिसता, उसीपर रखकर चमड़ा काटता और उसीपर रखकर कई बार चमड़ा सिलाई करता, पर उसका पद गाना कभी बंद नहीं होता।

एक दिन एक ब्राह्मण उस तरफसे निकले, शालग्रामकी ऐसी अप्राप्य मूर्ति चमारके पत्थरकी जगह देखकर उन्हें दु:ख हुआ। उस

समय रामदास उस गोल मूर्तिको पैरोंके बीचमें रखकर उसपर औजार घिस रहा था। ब्राह्मणने विचार किया, 'भला, बंदरको हीरेकी कीमतका क्या पता? यह चमार शालग्रामको क्या पहचाने?' उन्होंने मूर्ति खरीदनेका विचार कर नजदीक आकर उससे कहा— 'भाई! आज मैं तुझसे एक चीज माँगता हूँ, तू मुझे देकर पुण्य लाभ कर। यह पत्थर मुझे बहुत सुन्दर लगता है, मेरे नेत्र इससे हटाये नहीं हटते, तू मुझे न देगा तो मुझे बहुत ही दु:ख होगा। तू चाहे तो इसके बदलेमें मुझसे दस-पाँच रुपये ले ले, परंतु यह पत्थर मुझे जरूर दे दे।'

ब्राह्मणकी यह बात सुनकर रामदासने कहा—'पण्डितजी! यह है तो मेरे बड़े कामकी चीज, ऐसा पत्थर मुझे आजतक नहीं मिला था, पर जब आप इसके न मिलनेसे इतने दु:खी होते हैं, तो लीजिये, मैं आपको दे देता हूँ, कीमत मैं कुछ भी नहीं लूँगा। आपके आशीर्वादसे मेहनत करता हूँ, उसीसे तीनों प्राणियोंके पेट भर जाते हैं, ज्यादा लोभमें क्या रखा है? मुझे कोई हवेली तो बनवानी नहीं है, प्रभुने जो कुछ दिया है, वही मेरे मन राज्यसे बढ़कर है। लीजिये, आप खुशीसे इस पत्थरको ले जाइये।' इतना कहकर रामदासने शालग्रामजीकी मूर्ति पण्डितजीको दे दी।

पण्डितजी इस दुर्लभ मूर्तिको पाकर बड़े ही प्रसन्न हुए, वे उसे लेकर घर आये, उन्होंने कुएँके जलसे स्नान किया। फिर पवित्र स्वच्छ वस्त्र पहनकर शालग्रामभगवान्‌को पंचामृतसे स्नान करा सिंहासनपर पधराकर षोडशोपचारसे उनकी पूजा की। इस प्रकार पण्डितजी नियत समयपर प्रतिदिन भगवान्‌की पूजा करने लगे।

पण्डितजी पूजा तो बड़ी विधिसे करते थे, परंतु उनके हृदयमें दैवी गुण नहीं थे। उसमें लोभ, ईर्ष्या, कामना, भोगवासना, इन्द्रियसुखकी लालसा, क्रोध, वैर आदि दुर्गुण भरे थे, इसीसे वे पूजा करते समय

भगवान्‌से अपने मनोऽनुकूल कार्योंकी सिद्धिके लिये याचना किया करते। रामदास अशिक्षित था, परंतु उसका हृदय बड़ा ही पवित्र था, उसके मनमें लोभ, ईर्ष्या, भोगेच्छा, क्रोध और वैर आदिका नाम-निशान भी नहीं था। वह तीनों प्राणियोंके पेट भरने और अंग ढकने-जितने पैसोंसे अधिक धन-सम्पत्तिकी इच्छा कभी नहीं करता था, अनित्य ऐश्वर्यकी कल्पनाओंमें उसका मन कभी स्वर्ग, पाताल और भूलोकपर नहीं भटकता था, रूखी-सूखी रोटी और दालकी कनीमें ही उसे संतोष था। शुद्ध हो या अशुद्ध, वह सात्त्विक श्रद्धा और परम विश्वासके साथ प्रेमपूर्वक प्रभुके नाम-गुणका गान किया करता था। भगवान् शालग्रामने विचार किया—'अहा! जब वह परम श्रद्धा-भक्तिपूर्वक गीत-गोविन्द गाता हुआ मेरी मूर्तिपर जल छोड़कर अपना औजार घिसता था, उस समय मुझे ऐसा लगता था मानो कोई परम भक्त पुरुषसूक्तसे मुझे स्नान कराकर मेरा शरीर पोंछता है। जब वह मेरा नाम-संकीर्तन करता हुआ मूर्तिको पैरमें रखकर उसपर चमड़ा रखकर काटता था, तब मुझे ऐसा लगता मानो मेरे अंगोंपर कोई भक्त चन्दन-कस्तूरीका लेप कर रहा है। अवश्य ही उसको मेरे यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं है; परंतु उसने अपनी सरल, विशुद्ध, निःस्वार्थ भक्तिसे मुझे वशमें कर लिया है; इधर यह पण्डित जरूर ब्राह्मण है, वर्णमें ऊँचा और त्रिवर्णसे पूजनीय है और मेरी पूजा भी विधिसे करता है, परंतु यह अपनेको केवल मेरा ही दास नहीं मानता, यह तो धन-कीर्तिका दास है, उन्हींके लिये मेरी पूजा करता है, इसका ध्येय तो धन-कीर्ति है। यह वास्तवमें धन-वैभवका ही भक्त है, मुझे तो इसने उनके पानेका उपाय बना रखा है; इसका हृदय शुद्ध और निःस्वार्थ नहीं है। मैं जैसा विशुद्ध और निःस्वार्थ भक्तिसे वश होता हूँ, वैसा दूसरे किसी साधनसे नहीं होता। मैं विशुद्ध, सरल, निष्काम, सात्त्विकी श्रद्धासे

अविधिपूर्वक की गयी पूजासे वैसा प्रसन्न होता हूँ, वैसा शुष्क, स्वार्थी हृदयकी विविध आडम्बरयुक्त षोडशोपचार पूजासे नहीं होता। मेरा राज्य विशुद्ध भाव-भक्तिका है; स्वार्थ और कपटका नहीं।

यह विचारकर भगवान् शालग्रामने पुनः रामदासके घर जाना निश्चय किया। रातको स्वप्नमें ब्राह्मणको आदेश-वाणी सुनायी दी—'ब्राह्मण! कल सबेरे ही मुझे रामदास चमारके घर पहुँचा आना, तेरी स्वार्थभरी आडम्बरी पूजा मुझे अच्छी नहीं लगती, उसके भावभरे गीत-गोविन्दको सुनकर मुझे बड़ा आनन्द मिलता है। परंतु मेरी पूजा कभी व्यर्थ नहीं जाती, इसलिये तेरी धनकामना पूर्ण होगी। तू यथेष्ट धन और यशको पावेगा, परंतु प्रातःकाल ही मुझको भक्त रामदासके घर अवश्य पहुँचा देना।'

ब्राह्मण भगवान्‌की आज्ञा पाकर डर-सा गया, सबेरा होते ही वह स्नान-सन्ध्यासे निवृत्त होकर प्रभु शालग्रामकी मूर्तिको एक कपड़ेमें लपेटकर रामदासके घरकी ओर चल पड़ा। जाकर देखता है, रामदास ध्यानस्थ बैठा है, नेत्रोंसे आँसुओंकी धारा बह रही है और वह धीरे-धीरे वही 'गीत-गोविन्द' गा रहा है। ब्राह्मणने उसका ध्यान भंग करते हुए कहा—'भाई! यह लो तुम्हारा धन, धन्य है तुम्हारे माता-पिताको और तुमको। रामदास! तुम बड़े ही पुण्यात्मा हो, जो तुमने भगवान्‌को अपने वश कर लिया है। अब इसे मामूली पत्थर न समझना। यह उन्हीं त्रिभुवननाथ भगवान्‌की प्रतिमा है, जो सारे विश्वके घट-घटमें विराजमान हैं और जो सबकी गति तथा आश्रय हैं। इन्हींकी शरणागतिसे जीव मायाके बन्धनसे सहज ही छूट जाता है। तुम्हारे सरल निःस्वार्थ भावसे और गीत-गोविन्दके गानसे प्रभु तुमपर बड़े प्रसन्न हैं, अब तुम इनकी पूजा करना। इसीसे तुम्हें साक्षात् दर्शन होंगे। मैं महान् पापी हूँ, इसीलिये मेरी पूजा भगवान्‌को पसन्द नहीं आयी। भाई! तुम्हारा जीवन पवित्र हो गया

है, तुम भवसागरसे तर चुके, तुम भगवान्‌के अनन्य भक्त हो, धन्य है! तुम्हें बार-बार धन्य है!!'

ब्राह्मणके वचन सुनकर रामदासके हृदयमें दिव्य ज्ञानका उदय हो गया। उसने अति विनयके साथ ब्राह्मणके चरणोंमें प्रणाम किया। ब्राह्मणके चले जानेपर उसने गीत-गोविन्द गाते-गाते भगवान् शालग्रामको लेकर घरमें जाकर सारा हाल पत्नीको सुनाया और भगवान्‌को छोटे-से आसनपर बैठाकर वह उनकी पूजा करने लगा। पश्चात् प्रेममें गद्‌गद होकर उसने भजन गाया, अन्तमें ध्यानमें तल्लीन हो गया। कुछ समय बाद बाह्य चैतन्यता प्राप्तकर वह दोनों हाथ जोड़कर भगवान्‌से प्रार्थना करने लगा—

'प्रभो! मैं अति दीन, हीन, अज्ञान, दुर्जन, पतित प्राणी हूँ, रात-दिन चमड़ा चूँथना ही मेरा काम है, मुझमें न शौच है, न सदाचार। मुझ-सा नीच जगत्‌में और कौन होगा? ऐसे पतितपर प्रभुकी इतनी कृपा क्योंकर हुई? प्रभो! आज मुझे प्रत्यक्ष दीखता है कि तुम यथार्थ ही करुणासागर हो, दीनबन्धु हो, सच्चे पतितपावन हो।'

अब रामदासका प्रेम-समुद्र उमड़ पड़ा, वह धन्धे-रोजगारके लायक नहीं रह गया। प्रेममें विह्वल हो नाच-नाचकर प्रभुका नाम-कीर्तन करने लगा। प्रेमावेशमें उसमें अष्ट सात्त्विक भावोंका उदय होने लगा, वह कभी हँसता, कभी रोता, कभी चुप रहता, कभी गान करता, कभी नाम-कीर्तन करता और कभी नाचने लगता। होते-होते उसके मनमें प्रभुके दर्शनकी लालसा बड़े जोरसे जाग उठी, अब उसे प्रभुका वियोग असह्य हो गया। वह गद्‌गद कण्ठ होकर कहने लगा—'हे वंशीधर! हे मदनमोहन! तुम्हें नमस्कार है, बार-बार तुम्हारे पावन चरणोंमें मेरा नमस्कार है! प्रभो! क्या मुझको तुम्हारे परम आनन्दमय श्याम स्वरूपका दर्शन नहीं होगा? अवश्य ही यह मेरी आशा बालकके चाँद लेनेकी-सी है, लाखों वर्ष तप

करनेपर बड़े-बड़े देवता और ऋषि-मुनियोंकी जिन चरणोंका दर्शन नसीब नहीं होता; मैं दीन, हीन, क्षुद्र चमार उन दर्शनोंका आनन्द कैसे प्राप्त कर सकता हूँ? पर क्या करूँ, मुझसे रहा नहीं जाता। तुम्हींने तो मेरे हृदयमें यह आग लगायी है, अब यह तुम्हारे ही किये शान्त होगी। मैंने तो न पहचानकर तुम्हारी मूर्तिका कितना निरादर किया; कितना अपमान किया और तुच्छ समझकर माँगते ही उसे दे डाला; परंतु तुम मुझे नहीं भूले। कृपा करके फिर आये और ब्राह्मणके द्वारा अपना स्वरूप बतलाकर मुझे इतना करनेकी हिम्मत दी। हे दीनदयालो! यह सारा साहस तुम्हारी ही कृपापर निर्भर करता है। एक सदाचारी ब्राह्मणके घरसे मुझ-जैसे नीच शूद्र और मैले-कुचैले चमारके घर पधारकर तुम्हींने तो मेरा साहस बढ़ा दिया है! यदि दर्शन न देना था तो यह सब क्यों किया? प्रभो! मैं तुमसे धन-जन, यश-कीर्ति, इन्द्रत्व, ब्रह्मत्व आदि कुछ भी नहीं चाहता। एक बार अपने साँवरे-सलोने चाँद-से मुखड़ेकी झाँकी दिखाकर मेरे मनको सदाके लिये चुरा लो। मेरे मोहन! करुणाकी वर्षा कर दो इस कंगालपर! एक बार दर्शन दो और मुझे कृतार्थ करो।'

इस प्रकार प्रार्थना करते-करते श्रीहरिके साक्षात्कारकी उत्कण्ठा उसके हृदयमें बड़ी बलवती हो उठी। वह रात-दिन सब कुछ भुलाकर 'प्रभो! दर्शन दो' की रट लगाने लगा!

भगवान् भक्तवत्सल हैं। भक्तका विशुद्ध भाव उन्हें बड़ा प्यारा लगता है। जो कोई भी काम, क्रोध, लोभ, मोह और दम्भको छोड़कर विशुद्ध और निःस्वार्थ हृदयसे परम विश्वासपूर्वक एकमात्र भगवान्‌को ही अपना आश्रय बनाकर प्रार्थना करता है, उसकी प्रार्थना भगवान् तत्काल सुनते हैं।

भावग्राही भगवान् रामदासकी प्रेमभरी पुकार सुनकर स्थिर न रह सके, वे एक वृद्ध ब्राह्मणका स्वरूप धर भक्तके घर पहुँचे। जाकर

देखते हैं कि भक्त रामदास भगवत्प्रेमकी मस्तीमें झूमता हुआ कीर्तन कर रहा है। कभी नाचता है, कभी गाता है, देहकी सुध नहीं है, मन-ही-मन न मालूम क्या बड़बड़ाता है और कभी शालग्रामकी मूर्तिके पास जाकर साष्टांग दण्डवत् करने लगता है। लीलामय भगवान् कुछ देरतक भक्तकी प्रेमदशाका निरीक्षण कर मुसकराते हुए उसके पास जाकर उसे सचेत करते हुए बोले—'अरे भाई! तू इतना क्यों नाचा-कूदा करता है? रात-दिन क्या बड़बड़ाता है? सारा काम-धन्धा छोड़कर तू किसको रिझानेके लिये यह सब कर रहा है?'

भगवत्प्रेरणासे रामदासकी प्रेमसमाधि तत्काल टूट गयी। वह अन्तर्जगत्से बहिर्जगत्में आ गया। उसने देखा, सामने एक दिव्यमूर्ति वृद्ध ब्राह्मण खड़े हैं। उसने विनीतभावसे प्रणाम करते हुए कहा—'देव! मैं महामूर्ख और नारकी प्राणी हूँ। मेरा अपराध क्षमा करना। आपके प्रश्नोंका मैं क्या जवाब दूँ? मैं जातिका चमार, मनका कुटिल, विद्याबुद्धिहीन।' इसके बाद रामदास शालग्रामके मिलने, ब्राह्मणको देने और वापस प्राप्त होनेकी सारी घटना सुनाकर कहा—'ब्राह्मण देवता मुझसे कह गये थे कि 'तू इन्हें भगवान् समझकर पूजा कर, इसीसे तुझे साक्षात् दर्शन होंगे।' परंतु मुझको अभीतक दर्शन नहीं हुए। मैं पूजाकी कोई विधि नहीं जानता; जैसा मनमें आता है वैसा ही करता और बोलता हूँ। आप कोई उपाय बतलाइये जिससे दीनदयालु प्रभु मुझ दीनपर दया करे।' यों कहते-कहते रामदास मतवाला-सा होकर अधीर हो उठा और रोने लगा। ब्राह्मण-वेषधारी श्रीहरिने उसे आश्वासन न देकर और भी तपानेके लिये उससे कहा—'अरे भाई! भगवान्का दर्शन कोई मामूली बात थोड़े ही है। बड़े-बड़े देवता और योगी, मुनि अनन्त कालतक तप, ध्यान और समाधि करनेपर भी जिनका दर्शन नहीं कर पाते, तुझ-

जैसे मनुष्यको उनके दर्शन कैसे हो सकते हैं? मेरी बात मान और इस लम्बी आशाको छोड़कर अपना काम-धन्धा कर!'

ब्राह्मणके इन वाक्योंसे रामदासका हृदय मानो विदीर्ण हो गया। उसकी आँखोंसे दड़-दड़ आँसू गिरने लगे। उसने कहा—'देव! आपका कहना सत्य है, परंतु मैं क्या करूँ? मुझसे रहा नहीं जाता। मैं नीच हूँ, पापी हूँ, मेरे पापकी और नीचताकी ओर देखकर भगवान् मुझको कदापि दर्शन नहीं दे सकते, यह मैं जानता हूँ परंतु मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि मेरे नाथ दीनबन्धु हैं। दयाके अपार सागर हैं, मुझे दर्शन देंगे और जरूर देंगे। जैसा रंग-रूप हो, लोग उसीको परम सुहागिन समझते हैं, जिसपर पतिका प्रेम होता है। मेरे स्वामीका स्नेह मैं परख चुका हूँ। आप जो कुछ भी कहें, मैं अवश्य ही भगवान्के दर्शन पाऊँगा।' यों कहते-कहते रामदासका कण्ठ रुक गया। भक्तके विशुद्ध भाव और दृढ़ विश्वासको देखकर अब भगवान्से नहीं रहा गया, उन्होंने अति मीठे स्वरसे कहा—'वत्स रामदास! तेरा जीवन धन्य है, तूने अपने प्रेमसे मुझको वशमें कर लिया, पापयोनि—अन्त्यज इस जन्ममें ब्राह्मण कभी नहीं बन सकता, परंतु मुझमें विशुद्ध प्रेम करके वह ब्राह्मणोंका भी पूज्य और आदरणीय मेरा भक्त बन सकता है। जाति नहीं बदल सकती, परंतु पद बदल जाता है। तू आज उसी परमपदको प्राप्त हो गया। ले, देख अपने अभिलषित मेरे दिव्य स्वरूपको!'

अकस्मात् अनन्तकोटि सूर्योंका प्रकाश छा गया। रामदासकी आँखें मुँद गयीं। उसने हृदयमें देखा, भगवान् मदनमोहन त्रिभंगीलाल मुसकराते हुए मधुर-मधुर मुरली बजा रहे हैं। कैसा सुन्दर रूप है! वह आनन्द-सागरमें डूब गया। अचानक आँखें खुलीं। देखता है सामने भी प्रभुका वही दिव्य सच्चिदानन्दघन विग्रह विराजमान है। रामदासके आनन्दका पार नहीं रहा। उसकी सारी व्याकुलता सदाके

लिये मिट गयी। उसका जीवन अमृतमय हो गया। उसने प्रणाम करके स्तुति करना चाहा, इतनेहीमें भगवान् अन्तर्धान हो गये। पुनः दर्शनके लिये रामदास छटपटाने लगा और भगवद्भजनमें तन्मय हो गया। योग-वियोगकी इसी आनन्दमयी अवस्थामें उसका शेष जीवन बीता और अन्तमें इस नश्वर देहको त्यागकर उसने प्रभुके दिव्य धाममें जा श्रीहरिका नित्य-पार्षद-शरीर प्राप्त किया।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

भक्त सालबेग

उड़ीसा-प्रान्तके कटक-शहरमें लालबेग नामक एक शक्तिशाली मुगल रहता था। उस समय उड़ीसामें गजपतिवंशका एक राजा शासन करता था, परंतु उसका तेज क्षीण हो चला था। लालबेगने सुअवसर देखकर अपना बल बढ़ाया और विशाल सैन्य लेकर उसपर धावा बोल दिया। लालबेग विजयी हुआ। उसके नामसे सारा प्रान्त थर्रा उठा। तबसे उसका प्रभाव फैल गया। इस लालबेगके कई पुत्र थे, उनमेंसे एकका नाम सालबेग था। सालबेगने बाल्यावस्थासे ही युद्ध-कला सीखना प्रारम्भ किया और युवा होते-होते वह उसमें निपुण हो गया। उसे अपनी बहादुरीपर बड़ा गर्व था। वीरत्वके मदमें चूर हुआ वह जमीनपर पैर भी नहीं रखना चाहता था।

एक बार सालबेग अपने पिताके साथ किसी युद्धमें गया और वहाँ उसने ऐसा रणकौशल और पराक्रम दिखलाया कि सभी लोग दंग रह गये। भगवान् किसीका भी मद नहीं रहने देते, मद उतारकर उसे अपनाया करते हैं। सालबेग बड़ी बहादुरीसे लड़ रहा था, परंतु दैवगतिसे अचानक शत्रुपक्षकी एक तलवार उसके सिरपर आ पड़ी, सिर फट गया और वह अचेत होकर तुरंत जमीनपर गिर पड़ा। सेवकगण उसको रणस्थलीसे अलग शिविरमें ले गये। कई दिनोंतक मरहमपट्टी करनेपर जब कोई लाभ नहीं दिखायी दिया तब पिता लालबेगने उसको घर भेजवा दिया। घरपर माता उसकी तन-मनसे सेवा करने लगी। बहुत दिन बीत गये; परंतु जरा भी आराम नहीं मालूम हुआ। कुछ दिनोंतक तो लालबेगने पुत्रकी बीमारीपर बहुत ध्यान रखा, परंतु ज्यों-ज्यों उसके रोगकी अवधि बढ़ती गयी, त्यों-ही-त्यों लालबेगका मन भी हटने लगा। अन्तमें उसको निकम्मा समझकर

लालबेगने उकताकर उसकी खोज-खबर रखना भी छोड़ दिया। संसारमें स्वार्थका सम्बन्ध ऐसा ही हुआ करता है। जबतक अपना काम निकलता है, स्वार्थसाधनमें सहारा मिलता है तबतक मनुष्य ममत्व रखते हैं, जहाँ स्वार्थ नहीं दिखायी देता, वहाँ कोई बात भी नहीं पूछता। सारी ममता मिनटोंमें हवा हो जाती है। अस्तु,

लालबेगकी उदासीनता देखकर घरके और लोग भी उसकी ओरसे उदासीन हो गये। केवल एक माता बची जो आहार-निद्रा भुलाकर दिन-रात पुत्रकी रोग-शय्याके पास बैठी रहती और प्राणपणसे सेवा-शुश्रूषा करती। एक दिन सालबेगका कष्ट बहुत बढ़ गया, तब उसने निराश-हृदयसे बड़े ही क्षीण स्वरसे कहा—

'माँ।'

'क्यों बेटा?'

'माँ! अब मैं नहीं बचूँगा।'

'न बचे तेरी बीमारी बेटा! यों क्यों बोल रहा है?'

'नहीं माँ! मैं सच कहता हूँ, अब मैं नहीं बचूँगा। मेरी बचनेकी इच्छा भी नहीं है। दिन-रात यों दुःख-भोग करनेकी अपेक्षा एक बार मरनेका कष्ट कहीं कम है।'

'यों पागलपन क्यों करता है? मरे तेरा शत्रु, बेटा! उसकी उम्र पाकर तू सौ वर्ष जी!'

'नहीं; अब मुझे बचनेकी बिलकुल आशा नहीं है। मौत नहीं आवेगी तो मुझे आत्महत्या करनी पड़ेगी। अब मुझसे यह दुःख नहीं सहा जाता। माँ! माँ!! तू मेरे अपराधोंको क्षमा कर और इस अपने कृतघ्न सन्तानको भूल जा।'

पुत्रकी बातें सुनते ही माताने एक लम्बी साँस ली। उसके पीड़ाके मार्मिक उद्गारोंने माताका हृदय विदीर्ण कर दिया। उसकी

आँखोंमें आँसू भर आये। बड़ी कठिनतासे आँसुओंको रोककर स्नेहपूर्वक पुत्रको छातीसे लगाकर उसने कहा—'बेटा! तेरे चले जानेपर मैं किसका मुँह देखकर जीऊँगी! यदि मेरे बलिदानसे तेरी रक्षा होती हो तो मैं तैयार हूँ; परंतु ऐसा क्यों होने लगा? मुझे तो अपने कर्मका फल भोगना ही पड़ेगा। हाँ, निरुपायके लिये एक उपाय अवश्य है, वह मैं तुझसे कहती हूँ परंतु क्या तू उसे कर सकेगा?'

माताकी बात सुनकर सालबेगने कहा—'क्यों नहीं, माँ! मैं तेरा कहा न मानूँगा तो और किसका मानूँगा? बोल, बोल, तुझे जो कहना है खुशीसे कह, मैं जरूर तेरे कहे मुताबिक करूँगा।'

माताने कहा—'बेटा! तुझसे वह नहीं होगा, कभी नहीं होगा। बचपनसे ही तुझमें जो संस्कार पड़ गये हैं—तुझे जैसी शिक्षा मिली है, उसके विपरीत आचरण तू कैसे कर सकेगा'। माताके इस वचनसे सालबेगको सन्देह हुआ। उसने व्याकुल होकर पूछा—'माँ! तू क्या कह रही है, कुछ भी समझमें नहीं आता। मेरी शिक्षा-दीक्षासे प्रतिकूल तू क्या कहना चाहती है?'

इसके उत्तरमें माताने कहा—'वत्स! मैं सदासे ही तेरी उस शिक्षा-दीक्षाके बिलकुल विरुद्ध हूँ, क्या इस बातको तू नहीं जानता? बेटा! मैं एक हिन्दू ब्राह्मणकी लड़की हूँ!' माताके इस वचनको सुनते ही सालबेग विस्मित होकर कहने लगा—'हैं, यह तू क्या कह रही है? तू हिन्दू है तो फिर मेरी माता किस प्रकार हुई?'

माताने कहा—'बेटा! तू यदि पूछता है तो आज लाज-शरम छोड़कर सब तुझसे कह डालती हूँ। दाँतमुकुन्दपुर गाँवका नाम तो तूने सुना होगा। वह गाँव किसी दिन बड़ा ही समृद्धिशाली था। उसी गाँवमें मेरी ससुराल थी। मेरे पति बचपनमें ही मर गये। सास

और ससुर भी पुत्र-वियोगसे दुःखी होकर परलोक सिधार गये। उसी समय तेरे पिताके अत्याचारसे बहुतेरे परिवार अपने घर-बार तथा धन-दौलतको छोड़कर उस गाँवसे भाग गये थे। गाँव उजाड़ हो गया। उस समय मैं एक दिन नदीमें स्नान करने गयी थी। दैवयोगसे उसी समय तेरे पिता कहींसे युद्ध करके अपनी सेनाके साथ लौट रहे थे। उस समय मैं पूर्ण युवावस्थाको प्राप्त हो गयी थी, रूपलावण्य भी भरपूर आ गया था, मुझे देखते ही तेरे पिताको मुझपर मोह हो गया और मुझ अकेली असहायाको वे बलात् अपने घोड़ेपर बैठाकर यहाँ ले आये। बेटा! मैं स्त्री-जाति अबला थी, मुझे वश करनेमें उन्हें अधिक देर न लगी, थोड़े ही दिनोंमें वस्त्र, आभूषण और मधुर सम्भाषणसे उन्होंने मुझे अपना बना लिया। उसीके फलस्वरूप तू पुत्ररूपमें मुझे प्राप्त हुआ। परंतु मालूम होता है, मुझ हतभागिनीके भाग्यमें यह सुख भी नहीं बदा है।'

यों कहते-कहते भावावेशसे उसका हृदय भर आया और कण्ठ रुक गया। सालबेगको सब समझते देर न लगी। माताकी अवस्थापर उसे बड़ी दया आयी और अन्तमें धैर्य धारणकर अपनी जन्मदायिनी माताको आश्वासन देते हुए उसने कहा—'माँ! तूने मुझे गर्भमें धारण किया है। मेरी यह देह तेरी ही है। बोल, बोल, माँ! तुझे जो कहना हो कह। तुझे जो उपाय बतलाना हो बतला दे। तू जो कुछ कहेगी, मैं उसीके अनुसार करूँगा!'

माँ बोली—'अच्छा तो कहती हूँ, सुन, परंतु पहले तेरे पिताके व्यवहारकी बात भी तुझे जना देती हूँ। हाय! वे मेरा और तेरा त्यागकर अपने अन्य स्त्री-पुत्रादिके साथ कैसे निश्चिन्त हो गये हैं, इसे तू देखता है न? जिसके लिये तूने यह दुःख सिरपर लिया, जिसके लिये अपनी जिन्दगीको जोखिममें डाला, वह आज इस अवस्थामें तेरी खबर भी नहीं लेता! उससे इतना भी नहीं होता कि एक आदमी भेजकर तेरी

हालत तो जान ले। बेटा! तू इसका कारण जानता है? दूसरा कोई कारण नहीं है, एकमात्र यही कारण है कि मेरा यौवन जाता रहा और तू भी बेकाम हो गया। तुझमें उसका काम करनेकी शक्ति नहीं रही। अब तुझसे या मुझसे उनका कोई स्वार्थ नहीं सधता, इसीसे यह अनादर है, यह तिरस्कार है। बेटा! यदि भगवान् तेरी रक्षा करें तो तू ही मेरे जीवनका सुख है और तभी मेरा जीवन किसी कामका है। बेटा! तू दासीपुत्र है, इसीसे तेरे पिता तुझे याद नहीं करते। परंतु तेरे बिना मैं तो एक क्षणभर भी नहीं रह सकती! तू ही मेरे जीवनका कारण—जीवनका धन है। तेरे बिना सारा संसार मेरे लिये सूना है। तू ही मुझ अन्धीकी आँख है, तेरे बिना मैं कैसे जीऊँगी? परन्तु यदि तू मेरे कहे अनुसार चलनेका मुझे विश्वास दिला दे तो मैं तुझे वह उपाय बतला दूँ। नहीं तो निश्चय जान कि तेरा और मेरा यह पापी शरीर एक ही साथ नष्ट हो जायगा।'

सालबेग आँसूभरे नेत्रोंसे बोला—'माँ! माँ!! तुझसे एक बार नहीं, हजार बार प्रतिज्ञा करके कहता हूँ कि मैं तेरे वचनका अवश्य पालन करूँगा; बल्कि एक दूसरी और प्रतिज्ञा करता हूँ कि अच्छा होते ही मैं तेरे आँसू पोंछ दूँगा, फिर तुझे रोनेका कभी अवसर ही न रहेगा। माँ! अब तू रो मत, रो मत! मुझे वह उपाय शीघ्र बतला! मैं वचन देता हूँ कि उसका पालन जरूर करूँगा।'

पुत्रके वचन सुनकर माताके तप्त हृदयको कुछ शीतलता मिली। पश्चात् आँसू पोंछकर वह कहने लगी—'बेटा! अब तू कपट छोड़कर पूर्ण विश्वास और श्रद्धापूर्वक आनन्दकन्द नन्दनन्दन वृन्दावनचन्द्र भगवान् श्रीकृष्णचन्द्रका भजन कर। अहा! वह अनन्तकोटि ब्रह्माण्डके नाथ हैं। सब देवोंके राजा हैं। उनकी आज्ञाको सभी अवनत-मस्तक हो सिरपर चढ़ाते हैं। वही निरुपायके एकमात्र उपाय हैं; महौषधि हैं। उनका भजन करनेसे निश्चय ही तेरे सारे रोग-

दोष दूर हो जायँगे। बेटा! यही एक उपाय है, इसलिये अब उन विश्वपिताका ही भजन कर, उन्हींका स्मरण कर।'

पुत्र बोला—'माँ! ऐसा ही करूँगा। उन्हींका भजन करूँगा, परंतु मैं तो उनके विषयमें कुछ जानता नहीं। वे क्या हैं? कैसे हैं? कहाँ राज्य करते हैं, उनके माता-पिता कौन हैं तथा उनका भजन किस तरह किया जाता है? यह तो मैं जानता ही नहीं। इसलिये माँ! तू मुझे उनकी पहचान करा दे, जिससे मैं उनका भजन करूँ?'

सालबेगके घरमें आनेके पश्चात् सालबेगकी माताको कभी किसीके भी मुखसे श्रीकृष्ण-कथा सुननेका संयोग नहीं मिला था। आज पुत्रके पास अपने प्राणप्रिय प्रभुकी चर्चाका अवसर मिलनेसे उसके आनन्दका पार न रहा। वह मृदु-हास्य करती हुई बोली—'भाई! मैं एक-एक करके सब बतलाती हूँ तू ध्यान देकर सुन। उनके पिताका नाम नन्दजी है, माताका नाम यशोदाजी है। उनकी प्रियाका नाम श्रीमती राधिकाजी है। उनका रूप बहुत ही मनोहर है, वह वृन्दावनके राजा हैं। उनके राज्यमें उनकी सारी प्रजा खूब सुखसे दिन बिताती है। अहा! उनका कैसा सुन्दर स्वरूप है! उनको देखकर कामदेवका मन भी मोहित हो जाता है। अहा! उनकी श्यामल कान्ति कैसी सुन्दर है! नवीन जलधर अथवा नीलकान्तमणिके साथ भी तुलना नहीं की जा सकती। अहा! उनके मस्तकपर कुंचित केशकलाप कैसे सुशोभित हो रहे हैं, वह कानोंमें मकरकुण्डल धारण किये हुए हैं, उनके नयन खिले कमलके समान हैं, भृकुटी कामदेवके बाणके समान कमनीय है, नासिकाके अग्रभागमें सुरम्य मोतीकी लटकन लटक रही है, श्रीहरिके दाँत अनारके दानेसे भी बढ़कर सुन्दर हैं, लाल अधरोंमें सुधा स्रवित करता मन्द-मन्द हास्य दीख पड़ता है। अहा! मेरे प्रभुके इस सुन्दर श्रीमुखको देख चन्द्र भी लज्जित हो जाता है। प्रभुकी गर्दन भी वैसी ही सुन्दर है, उसमें

प्रभुने सुन्दर वनमाला धारण कर रखी है। उनके बाहु बहुत विशाल हैं तथा नाना प्रकारके रत्नालंकारोंसे विभूषित हैं। प्रभुने अपनी अँगुलिमें सोनेकी अँगूठी पहन रखी है। पीताम्बर धारण किया है। चरणोंमें नूपुर बाज रहे हैं। उनके पदतलमें ध्वजा और वज्र आदिके चिह्न सुशोभित हो रहे हैं। इन सबसे बढ़कर उनकी मधुरी मुरली सबको अत्यन्त ही प्रिय लगती है। इसी मुरलीने व्रजवनिताओंको पगली बना दिया था। भाई! प्रभुका यथार्थ वर्णन कभी हो ही नहीं सकता। शेषनाग अपने सहस्र मुखसे अभीतक उनके सारे गुण गाकर पार नहीं पा सके तो मेरी तो बिसात ही क्या?

बेटा! श्रीत्रिभुवनपतिके इस विश्वमोहिनी रूपका आँखें मूँदकर ध्यान कर। ब्रह्मादि देवता, महर्षि, देवर्षि, साधु और सज्जन सदा उनका ही ध्यान करते हैं। अखिल ऐश्वर्यकी अधिष्ठात्री कमलादेवी भी उनके श्रीचरणोंकी सेवा करनेके लिये सदा तैयार रहती हैं। बेटा! भक्त भी उसी चरण-सेवाकी इच्छा करते हैं। तू भी उन्हींकी शरण ले, उन्हींका ध्यान धर। मेरे भक्त पिताने मुझको बाल्यावस्थामें ही इस परममंगल दिव्य स्वरूपका उपदेश देकर कहा था कि 'बेटी! जब कभी कर्मफलके वश तुझे कोई भी सन्ताप हो, तेरे ऊपर कोई विपत्ति आवे तब तू एक बार आँखें मूँदकर इस श्यामसुन्दर मुरलीधरकी मूर्तिका ध्यान करना। इससे जरूर तेरे सब सन्ताप जाते रहेंगे।' 'बेटा! मैं क्या कहूँ, मैं इस राक्षसपुरीमें अबतक जो सुस्थिर रह सकी हूँ, यह इसी भगवद्ध्यानका ही प्रभाव है। तू भी उसी श्यामसुन्दरके स्वरूपका ध्यान कर, इससे तेरे सब दुःख जाते रहेंगे।'

इस प्रकार बोलते-बोलते भावकी प्रबलतासे जननीका मुखमण्डल एक अपूर्व लावण्यके विकाससे जगमगा उठा। सालबेग उसे देखकर स्तब्ध हो गया। उसी समय उसके मनका मैल धुल गया और

उसका अन्तःकरण शुद्ध हो गया। थोड़ी देर बाद उसने अपनी मातासे आग्रहपूर्वक पूछा—'माँ! तुम्हारे वृन्दावनचन्द्रका रूप तो मालूम हुआ, परंतु वे मिलेंगे कहाँ?' माँ बोली—'बेटा! उनकी लीला बहुत ही विचित्र है, तू जहाँ कहीं भी उनका चिन्तन करेगा, वे वहींपर वैसे ही प्रकट होंगे—आ विराजेंगे। भाई! अब तू समस्त भय और भ्रान्तिको छोड़कर उनका ही चिन्तन कर, उन्हींका ध्यान कर।'

सालबेगने माँसे फिर पूछा—'अच्छा माँ! मैं उनका ध्यान तो करूँगा, पर यह तो बता कि मुझे कितने दिनोंमें उनका दर्शन होगा? कितने दिनोंमें मैं इस दारुण पीड़ासे मुक्त होऊँगा?' माताने कहा—'बेटा! श्रीकृष्ण-भजनका मूल विश्वास है, तू किसी भी प्रकारके संशयको मनमें न आने देकर दृढ़ विश्वाससे उनका ध्यान करेगा, तो केवल बारह दिनोंमें ही तुझे श्रीप्रभुके दर्शन होंगे। परंतु याद रखना कि यदि तू प्रभुके दर्शन होनेसे मेरा दुःख दूर होगा कि नहीं अथवा इस प्रकार ध्यान करते-करते मुझे दर्शन होगा कि नहीं, इस प्रकारका सन्देह और संकल्प-विकल्प उठावेगा तो बारह दिन तो क्या, बारह वर्षोंमें भी उनका दर्शन न होगा। इसलिये सब प्रकारके सन्देह और संकल्प-विकल्पका सर्वथा त्यागकर दृढ़ विश्वास और अचल श्रद्धासे उनका ध्यान कर, चिन्तन कर, इससे अवश्य ही बारह दिनमें अथवा उसके पहले ही उनकी श्रीमूर्तिका तुझे दर्शन होगा।'

सालबेग बोला—'अच्छा, मैं ऐसा ही करता हूँ। अब इसी क्षणसे मैं अपने दोनों पलकोंको बन्दकर श्रीप्रभुके मंगलमय रूपके सिवा दूसरे किसी भी रूपका विचार अपने अन्दर प्रवेश न करने दूँगा। परंतु माँ! तू भी मेरे लिये उनको जना दे कि मेरी बहुत जाँच न करें, दर्शन देनेमें देर न करें। परम प्रभु हँसते मुखसे वंशी बजाते

हुए मुझसे अविश्वासीके गलेमें अपनी विमल प्रेमकी माला पहना दें और उनके आकर्षणसे मैं उनका भजन कर सकूँ। माँ! अब यदि उन परम प्रभुका दर्शन नहीं हुआ तो यह नेत्र फिर खुलनेवाले नहीं हैं। यह अन्तिम बार इस सृष्टिको देख लेते हैं, यह निश्चय मान। परंतु माँ! मुझे तुझसे एक बात पूछनी है, क्या उस परम प्रभुके स्मरण करनेका कोई मन्त्र-तन्त्र भी है?'

पुत्रके वचन सुन हर्षभरे गद्गद कण्ठसे माँ बोली—'हाँ, है बेटा! मन्त्र है। उनका मनोहर नाम ही उनको प्राप्त करनेका मन्त्र है। उसी श्रीकृष्ण-नामका जप कर, उन्हें इसी नामसे पुकार, इसके आकर्षणसे ही वे अपने-आप तेरे पास चले आवेंगे।'

'अच्छा माँ! ऐसा ही करता हूँ, ऐसा ही करता हूँ।' इतना कहकर सालबेग उच्च कण्ठसे 'कृष्ण-कृष्ण' कहने लगा। श्रीकृष्ण-नामकी ऐसी अपार महिमा है कि उसकी एक बार रटन करनेसे बारम्बार रटन करनेका मन होता है। श्रीकृष्ण-नामकी रटन करनेसे रसना नाच उठती है और इतनेहीसे वह तृप्त नहीं होती, उसके मनमें पुनः ऐसा विचार उठता है कि 'अरे! मैं अकेली उनके नामका कितना कीर्तन कर सकूँगी? अहा! इस समय मेरे-जैसी हजारों जिह्वाएँ होतीं तो अपने प्राणारामके नामकी अविराम घोषणा की जा सकती।' सालबेगकी जिह्वा भी केवल एक बार कृष्ण-कृष्ण कहकर चुप नहीं हो गयी, वह उच्च स्वरसे श्रीकृष्ण-नामका कीर्तन करने लगी। भगवन्नामकी अतुल शक्तिसे सालबेगका बाह्य ज्ञान जाता रहा। नामरटनमें वह लीन हो गया और उसके मनके साथ-साथ उसकी सारी इन्द्रियाँ भी उस परम प्रभुके पवित्र नामका रटन करने लगीं।

उसी समय उसके अन्तःकरणमें मदनमोहन, मुरलीधरके रूपकी प्रभा प्रकटित हुई। उसे देखते ही सालबेग परम आनन्दमें नाच उठा

और जैसे-जैसे उसे भावग्राही भगवान्‌की हृदयग्राही मूर्तिका दर्शन होता गया, वैसे-वैसे वह मन-ही-मन फूलता गया। धीरे-धीरे उसको श्रीमूर्तिके सम्पूर्ण रूपका दर्शन हुआ। सालबेगने प्रभुका, उनके वस्त्राभूषण इत्यादिका सूक्ष्मदृष्टिसे दर्शन कर लिया। श्रीकृष्ण-स्मरणके अप्रतिहत प्रभावसे वह श्रीकृष्णभगवान्‌की मानसिक पूजा करने लगा। इसके बाद उसके भीतरसे एक विचित्र वन्दना स्वयमेव निकल पड़ी और उसके प्रभावसे वह मन-ही-मन कहने लगा—'हे वृन्दावनचन्द्र! तुम्हारी जय हो। हे संसारतरुके मूलकन्द मुकुन्द! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे यमलार्जुन-भंजनकारी, तृणावर्त और शकटासुरके गर्वगंजनकारी श्रीहरि! तुम्हारी जय हो, जय हो! हे वृषरूपी अरिष्टासुरके नाश करनेवाले, श्रीगोकुलकी शोभा बढ़ानेवाले प्रभु! तुम्हारी जय हो, जय हो। हे बकासुरके विदारक! हे अघासुर और प्रलम्बासुरके प्राणनाशक! तुम्हारी जय हो, प्रभुकी जय हो। हे प्रभु! तुमने वृन्दावनमें वन-वन गौएँ चरायी हैं, अनेकों अनल-सम दैत्यकुलोंका नाश किया है। हे प्रभु! तुम दुर्जनोंका दमन और सज्जनोंका पालन करते हो। हे प्रभु! तुम परम दयालु हो! हे प्रभु! तुमने कालिन्दीके विषमय जलमें कूद कालियनागको नाथ सब गोप-गोपिका और गौओंकी रक्षा की है। हे प्रभु! तुमने कदम्बपर चढ़कर मधुरी वंशी बजा सब व्रज-गोपिकाओंको पागल कर दिया है। हे दीनदयालो! प्रणतप्रतिपाल! तुम्हारे मस्तकपर गुंजाकी माला सुशोभित हो रही है। प्रभु! प्रभु! नाथ! तुम्हारी जय हो।' प्रभु अन्तर्धान हो गये।

सालबेगने भावके आवेगमें इस प्रकार कितनी ही देर स्तुति कर अपनेको भगवान्‌का दास समझ दृढ़ विश्वास करके उनके श्रीचरणोंमें आत्मसमर्पण कर दिया। उस समय उसके शरीरमें आनन्द-ही-आनन्द व्याप रहा था, नेत्रोंसे अनिमेष प्रेम-अश्रुधारा बह रही थी।

परंतु उसी समय वह चमक उठा और उसकी आत्माने बाह्यजगत्‌में प्रवेश किया। उसको अबतक अपने शरीरका बिलकुल ही भान न था, परंतु अब शरीरका ज्ञान हो गया। इससे उसके मनमें यह विचार आया—'अहा! इतना भजन करनेपर भी देहका दुःख तो दूर हुआ ही नहीं।' ऐसा विचारकर वह अपनी मातासे कहने लगा—'माँ! तेरे श्रीकृष्णकी उपासना की तो भी मेरी पीड़ा तो नहीं गयी। जान पड़ता है, यह तो उलटी बढ़ती ही जाती है।' सालबेगके वचन सुनकर माँने कहा—'भाई! घबड़ा मत। उन नरहरिकी लीला बहुत ही विचित्र है। जब बड़े-बड़े कष्ट सहे जाते हैं तभी उन्हें दया आती है। अहा! तेरा कष्ट बढ़ाकर वे देख रहे हैं कि तू कष्टमें भी उनका मंगलमय नाम भूलता है या नहीं। इसलिये उन्होंने तेरी पीड़ा बढ़ा दी है, परंतु तू उन्हें भूल मत। उन्हें नहीं भूलनेमें कल्याण है। बेटा! अब भी किसी प्रकारका भी सन्देह मनमें न लाकर दृढ़ विश्वाससे उन मुरलीधरका भजन कर।'

माता कहती है कि 'संशय न कर, संशय न कर' परंतु संशयका त्याग करना क्या खेल है? देखते-ही-देखते ग्यारह दिन बीत गये तथापि पीड़ा ज्यों-की-त्यों रही। सालबेग कितना धीरज धरे? अब उससे सहन न हुआ, वह बहुत उकताकर मातासे बोला—'माँ! मालूम होता है कि प्रभुको भी यही अच्छा लगता होगा कि मेरी मृत्यु हो जाय, इसीसे उन्होंने मेरे ऊपर दया नहीं दिखलायी! इसीसे शायद उन्होंने मुझे इस दारुण दुःखसे नहीं छुड़ाया।'

पुत्रको इस प्रकार कलपते देखकर सालबेगकी माताने उसे कोई दूसरा उपदेश न दिया। उसने दूसरा उपचार नहीं बतलाया। वह अपने पुत्रके मनमें दृढ़ विश्वास उत्पन्न करनेके लिये यही सलाह देने लगी कि 'बेटा! धीरज धर। मनके सब सन्देह निकाल दे। सारे संशयोंको छोड़ केवल श्रीहरिका ही स्मरण कर।'

रातके समय सालबेग श्रीकृष्णभगवान्‌का चिन्तन करते-करते निद्रादेवीके अधीन हुआ। यदि श्रीकृष्णभगवान्‌ने कृपा करके रातको रोगमुक्त न किया तो प्रातःकाल होते ही आत्मघातका निश्चय करके वह सोते समय रातको कहने लगा कि—'हे प्रभु! यह मेरा अन्तिम निश्चय है, मेरी माताके अनुसार कल सबेरे बारह दिन पूरे होते हैं। बस, आजकी रात बीचमें है। इसमें यदि तुम्हारी कृपा न हुई तो अवश्य मैं आत्महत्या करके अपने देहका त्याग करूँगा। ऐसा होनेसे पीछे मेरी माताकी भी मृत्यु होगी। इस प्रकार कल सबेरा होते ही हम दोनों इस लोकसे बिदा हो जायँगे।'

माता भी सालबेगके पास ही सोयी है। वह भी विचारमें ही है, परंतु उसका विचार जुदा है। वह भी श्रीकृष्णभगवान्‌का चिन्तन करती है। पर उसके चिन्तनमें सन्देह या शंकाकी गन्ध भी नहीं। वह तो केवल शुद्धभावसे निःशंक हो श्रीहरिका स्वाभाविक स्तवन करती है। वह कालक्षेप कर रही है, उसे विश्वास है कि पुत्रपर श्रीहरिकी कृपा होगी ही। हुआ भी वैसा ही, रातके दो पहर व्यतीत हो गये हैं। माता-पुत्र दोनों गाढ़ी निद्रामें पड़े हैं। उसी वक्त श्रीहरि आ पहुँचे। सालबेगको एक अद्‌भुत स्वप्न हुआ। स्वप्नमें उसने देखा कि श्रीहरि उसके सिरहाने बालमुकुन्द-वेषमें विराजमान हैं और हँसते-हँसते कहते हैं—'सालबेग! अब फिक्र मत कर, उठ बैठ और मेरे हाथसे यह विभूति लेकर अपने घावपर लगा दे, इससे तेरा घाव सूख जायगा और तू स्वस्थ हो जायगा। इसके बाद तेरा जीवन सुखमें व्यतीत होगा, परंतु देख, पीछे मुझे भूल न जाना। अरे! निश्चय जान तेरा भवरोग भी दूर हो गया। जो किसी भी उद्देश्यसे सरल विश्वास और श्रद्धाके साथ मुझे सच्चे मनसे भजता है, उसको इस लोक और परलोकके सम्पूर्ण दुःखोंसे छुड़ाकर मैं अपना निज जन बना लेता हूँ।' यह सुनकर सालबेग उठ बैठा और

प्रभुके हाथसे विभूति लेकर अपने सब अंगोंमें लगाने लगा। थोड़ी-सी विभूति सिरपर धारण कर वह एकटकसे मधुसूदनकी मधुमय मूर्तिका दर्शन करने लगा। देखते-ही-देखते वह दिव्य मूर्ति हँसती हुई वहाँसे अदृश्य हो गयी। सालबेग भी निद्रावश हो गया। सबेरा होते ही वह जाग उठा। उसके मनमें आनन्दकी तरंगें उछलने लगीं। उठकर देखता है कि माँ अभीतक सोयी है। अपने शरीरकी ओर देखता है तो अत्यन्त विस्मित हो जाता है। उसके मस्तकका घाव सर्वथा मिट गया है और उसका केवल चिह्नमात्र रह गया है। अब उसके शरीरमें किसी प्रकारकी व्यथा नहीं, क्लेश नहीं, शोक नहीं। उसे ग्लानि भी नहीं। वह उठकर अपनी माताको पुकारने लगा— 'माँ! माँ!! देख, देख, तेरे करुणामय श्रीकृष्णभगवान्‌ने मुझपर करुणा की है। उठ-उठ देख, मेरा घाव सूख गया है और मैं कृतार्थ हो गया।'

माता तो श्रीकृष्णका ध्यान करती-करती कृष्णमय बनी सोयी थी। पुत्रके आनन्द-आवाहनको सुनते ही वह सारी बात समझ गयी। वह तुरंत उठ बैठी और स्नेहपूर्वक पुत्रको देखने लगी। अहा! पुत्रको देख उसके आनन्दकी सीमा न रही। पुत्र रोगसे मुक्त हुआ है, इसीका आनन्द नहीं, बल्कि वह श्रीकृष्णभक्त—श्रीकृष्ण-विश्वासी बन गया है, इसीका उसे महान् आनन्द हुआ।

माताको जगा देखकर सालबेग हर्षित हो बोला—'माँ! माँ!! देख मेरे शरीरमें वह घाव नहीं और वह व्यथा भी नहीं है। मेरा समस्त शरीर दिव्य आनन्दसे परिपूर्ण हो गया।' माताने कहा— 'बेटा! श्रीकृष्णभगवान्‌की महिमा ऐसी ही है। उनके समान दुःखियोंके दुःखको दूर करनेवाला दूसरा कोई नहीं। अब दृढ़ चित्तसे तू उनका भजन कर।'

सालबेग बोला—'हाँ, माँ! सत्य है उनके समान दुःखका नाश

करनेवाला देवता दूसरा नहीं। माँ! माँ!! तेरी कृपासे, तेरी शिक्षासे मेरा जीवन सफल हो गया। माँ! मुझे अब तू प्रसन्नचित्तसे आज्ञा दे अब मैं यहाँ नहीं रहूँगा। मैं संन्यासी होकर देश-देश घूमकर इस अनन्त दयासागर भगवान्‌की महिमाका प्रचार कर जन्मको सफल करूँगा।'

सालबेगकी माता भी सामान्य माता न थी। उसकी साधन-अवस्था सालबेगसे भी कहीं उन्नत थी। मन भी वशीभूत था। वह पुत्रकी इच्छासे बिलकुल ही उदास न हुई। उलटे हँसते-हँसते उसने संन्यासी होनेकी आज्ञा उसे दे दी। पुत्र प्रभुकी महिमाका विस्तार करेगा, इससे बढ़कर आनन्दकी बात और क्या होगी? परंतु उस समय उसने सालबेगसे कहा—'बेटा! जा, तेरी इच्छा पूर्ण हो। परंतु सुन, चाहे मुझको भूल जाना, सब कुछ भूल जाना, पर मेरे श्रीकृष्णभगवान्‌को कभी न भूलना। उनके नामकी रटनसे जिह्वाको और चिन्तनसे मनको सदा जाग्रत् रखना। यह बात कभी न भूलना।'

सालबेगने भक्तिपूर्वक माताके चरणोंमें दण्डवत् की और उसकी चरणरजको मस्तकपर चढ़ाकर मुक्तकण्ठसे कहा—'माता! प्रभुके ऐसे समर्थ और दयासागर होते हुए जो दूसरेकी शरण लेता है और उस प्रभुको नहीं भजता उसका मानव-जन्म व्यर्थ ही जाता है। माँ! तेरी कृपासे, तेरे आशीर्वादसे मैं परम प्रभुको कभी न भूलूँगा, तू भी उसे न भूलना।'

इतना कहकर सालबेग घरसे बाहर निकला और फिर कभी न लौटा। वहाँसे वह सीधा श्रीजगन्नाथजी गया और वहाँ कुछ दिनोंतक श्रीदीनबन्धुका दर्शन कर दक्षिणकी ओर चला गया। बहुत दिन हो गये, परंतु उसका समाचार किसीको न मिला। उसके चले जानेके

बाद उसकी माताको भी किसीने सालबेगके घरमें नहीं देखा। उसके बाद माता-पुत्रका परस्पर यहाँ मिलन न हुआ। हाँ, कितने ही दिनोंके बाद दोनों मिले अवश्य, परंतु इस लोकमें नहीं, परलोकमें—परमात्माके उस मधुमय परमधाममें जहाँ किसी प्रकारकी विपत्ति और शोक नहीं है और जहाँ जानेपर किसीका एक-दूसरेसे कभी वियोग नहीं होता।

बोलो भक्त और उनके भगवान्‌की जय!

॥ श्रीहरिः ॥

परम श्रद्धेय श्रीहनुमानप्रसादजी पोद्दार (भाईजी)-के अनमोल प्रकाशन

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
820	भगवच्चर्चा (ग्रन्थाकार)	355	महत्त्वपूर्ण प्रश्नोत्तर
050	पदरत्नाकर	356	शान्ति कैसे मिले?
049	श्रीराधा-माधव-चिन्तन	357	दुःख क्यों होते हैं ?
058	अमृत-कण	348	नैवेद्य
332	ईश्वरकी सत्ता और महत्ता	337	दाम्पत्य-जीवनका आदर्श
333	सुख-शान्तिका मार्ग	336	नारीशिक्षा
343	मधुर	340	श्रीरामचिन्तन
056	मानव-जीवनका लक्ष्य	338	श्रीभगवन्नाम-चिन्तन
331	सुखी बननेके उपाय	345	भवरोगकी रामबाण दवा
334	व्यवहार और परमार्थ	346	सुखी बनो
514	दुःखमें भगवत्कृपा	341	प्रेमदर्शन
386	सत्संग-सुधा	358	कल्याण-कुंज
342	संतवाणी—ढाई हजार अनमोल बोल	359	भगवान्‌की पूजाके पुष्प
		360	भगवान् सदा तुम्हारे साथ हैं
347	तुलसीदल	361	मानव-कल्याणके साधन
339	सत्संगके बिखरे मोती	362	दिव्य सुखकी सरिता
349	भगवत्प्राप्ति एवं हिन्दू-संस्कृति	363	सफलताके शिखरकी सीढ़ियाँ
350	साधकोंका सहारा	364	परमार्थकी मन्दाकिनी
351	भगवच्चर्चा	366	मानव-धर्म
352	पूर्ण समर्पण	526	महाभाव-कल्लोलिनी
353	लोक-परलोक-सुधार	367	दैनिक कल्याण-सूत्र
354	आनन्दका स्वरूप	369	गोपीप्रेम

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
368	प्रार्थना—प्रार्थना-पीयूष	381	दीन-दुःखियोंके प्रति कर्तव्य
370	श्रीभगवन्नाम	379	गोवध भारतका कलंक एवं गायका माहात्म्य
373	कल्याणकारी आचरण	382	सिनेमा मनोरंजन या विनाशका साधन
374	साधन-पथ—सचित्र	344	उपनिषदोंके चौदह रत्न
375	वर्तमान शिक्षा	371	राधा-माधव-रससुधा-(षोडशगीत) सटीक
376	स्त्री-धर्म-प्रश्नोत्तरी	384	विवाहमें दहेज—
377	मनको वश करनेके कुछ उपाय	809	दिव्य संदेश..........
378	आनन्दकी लहरें		
380	ब्रह्मचर्य		

गीताप्रेस, गोरखपुरसे प्रकाशित कुछ साधन-भजनकी पुस्तकें

कोड	पुस्तक	कोड	पुस्तक
052	स्तोत्ररत्नावली—सानुवाद	1214	मानस-स्तुति-संग्रह
819	श्रीविष्णुसहस्रनाम—शांकरभाष्य	1344	सचित्र-आरती-संग्रह
207	रामस्तवराज—(सटीक)	1591	आरती-संग्रह—मोटा टाइप
211	आदित्यहृदयस्तोत्रम्	208	सीतारामभजन
224	श्रीगोविन्ददामोदरस्तोत्र	221	हरेरामभजन—दो माला (गुटका)
231	रामरक्षास्तोत्रम्	225	गजेन्द्रमोक्ष
1594	सहस्रनामस्तोत्रसंग्रह	1505	भीष्मस्तवराज
715	महामन्त्रराजस्तोत्रम्	699	गंगालहरी
054	भजन-संग्रह	1094	हनुमानचालीसा—भावार्थसहित
140	श्रीरामकृष्णलीला-भजनावली	228	शिवचालीसा
142	चेतावनी-पद-संग्रह	232	श्रीरामगीता
144	भजनामृत—६७ भजनोंका संग्रह	851	दुर्गाचालीसा
1355	सचित्र-स्तुति-संग्रह	236	साधकदैनन्दिनी